Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

७५ नये पैसे

CC-0. In Public Domain. ... Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िए

देश-देश के नाग ३
—नरेन्द्रसिंह माथुर
विशाल ऊर्जा कणों का निर्माण ८
—डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा
पनडुब्बी ११
—राजेन्द्रकुमार
भविष्य का खाद्य पदार्थ एलगी १५
—डा. शिवगोपाल मिश्र
स्ट्रीमलाइनिंग १८
—प्रकाशचन्द्र अग्रवाल
पनामा नहर २२
—जुगलकिशोर वार्ष्णेय
सेम्युअल मोर्स २६
—रामसिंह
मधु २६
—जगदीशचन्द्र श्रीवास्तव
मैरिनर की शुक्रयात्रा ३३
—प्रेमलाल टण्डन
टेलीविजन ३७
—केशोशरन
कोलायड ४१
—सत्यकुमार
प्रशीतन द्वारा खाद्य-संरक्षण ४६
—बनवारीलाल शर्मा
जब चट्टान खिसकती है ५२
—भगवानदास गुप्त

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार ५०
विज्ञान क्लब ५५
इनाम लो ५८
आपके प्रश्न ५९
करो और देखो ६१
तुम्हारी कलम से ६२

अपना बात

तारापुर परमाणु-बिजलीघर के निर्माण ... अमरीका की अन्तरराष्ट्रीय विकास संस्था ... भारत को ३८ करोड़ रुपये का ऋण प्रदान ... जाना विज्ञान की उन्नति के लिए एक महत्त्व... कदम है।

तारापुर परमाणु-बिजलीघर १९६७ तक ... कर तैयार होगा और इससे लगभग ३,८०,... किलोवाट बिजली तैयार हुआ करेगी। ... बिजलीघर पर कुल खर्च लगभग ५४ करोड़ ... लाख रुपये बैठेगा। यह बिजलीघर संभवतः ए... का सबसे बड़ा और संसार के सबसे बड़े पर... बिजलीघरों में दूसरा होगा। इस बिजलीघ... महाराष्ट्र और गुजरात दोनों प्रान्तों को उ... मात्रा में बिजली प्राप्त हो सकेगी।

इसके अतिरिक्त अमरीकी सरकार ने ... करोड़ रुपये की यूरेनियम धातु भी देने का ... दिया है ताकि भारत परमाणु-विज्ञान के ... की ओर यथोचित रूप से उन्मुख हो सके। ... नियम का प्रयोग परमाणु-अस्त्रों को बनाने ... लिए भी हो सकता है, परन्तु भारत इसका ... केवल शांतिपूर्ण कार्यों के लिए करेगा।

इस प्रकार परमाणु विज्ञान की उन्नति ... लिए प्रदान किये गये अमरीकी ऋण के ... **विज्ञान-लोक** अपना हार्दिक आभार प्र... करता है।

वर्ष ४ अंक ६

विज्ञान लोक

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश-देश के नाग

'अच्छा हुआ तुम आ गये', क्लियोपेट्रा ने कहा और मखमली डब्बा खोलकर मखमली मौत को गले लगा लिया। मिस्र-वासी उस नन्हे कोबरा इजिप्शियन एस्प (Egyptian Asp) ने इतिहास-प्रसिद्ध क्लियोपेट्रा को चुपचाप ही जीवन से मुक्ति दिला दी। यही एक उल्लेखनीय उदाहरण मिलता है जिसमें मनुष्य ने स्वयं को डसवाकर भी नाग से लाभ उठाया हो।

बात अफ्रीकी नाग की चल रही है, वह भी खासकर इजिप्शियन एस्प की। संसार-प्रसिद्ध नागों में प्रथम स्थान भारत का है। भारत के पश्चात् द्वितीय स्थान अफ्रीका का है जहाँ नागवंश की मम्बा (mamba) शाखा प्रसिद्ध है। उसी शाखा में इजिप्शियन एस्प सबसे प्रमुख है। इसमें एक विशेषता है। इसका काटा हुआ व्यक्ति चीख-पुकार और हाय-हाय नहीं करता; बस, खामोशी से खामोश हो जाता है। इनके दंश में पीड़ा नहीं होती। इसीलिए तो क्लियोपेट्रा ने इसको चुना था और इसीलिए यही जाति वहाँ के पूर्वकालीन राजबन्दियों को कारागार की अमानुषीय यातनाओं से मुक्ति दिलाने का प्रिय साधन मानी जाती थी। मिस्र की प्राचीन शिल्प तथा वास्तुकला में ये ही नाग व्यापक रूप से देखने को मिलते हैं।

नाग-समूह अन्यान्य सर्पों से सर्वथा भिन्न है। सर्पजाति में प्राणघातक फणिधर सर्प 'नाग' कहलाते हैं। ये चार परिवारों में बँटे रहते हैं। वे चारों परिवार भी दो-दो शाखाओं में विभाजित रहते हैं। एक शाखा का नाम प्रोटेरौग्लाइफा (Proteroglypha) है जिनके विषदन्त सामने के जबड़े में जुड़े रहते हैं। दूसरी का नाम सोलेनोग्लाइफा (Solenoglypha) है जिनके विषदन्त काफी बड़े होते हैं और जिन्हें अवकाश के समय पीछे को मोड़कर

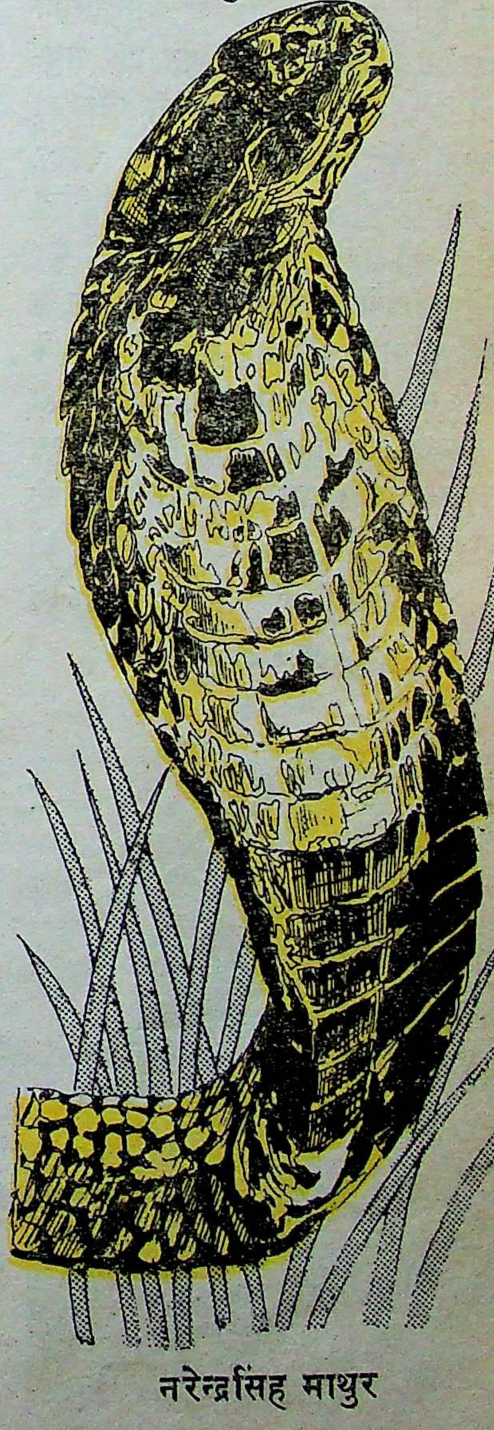

नरेन्द्रसिंह माथुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी रखा जा सकता है । ऐसे सन्मुख-विष-दन्तधारी नागों की ये दोनों शाखाएँ इलेपिडी (Elapidae) कहलाती हैं । इनमें कोबरा, कोरलस्नेक तथा मम्बा सम्मिलित हैं । दूसरी शाखा हाइड्रोफिडी (Hydrophidae) कहलाती है जिसमें जल-सर्प सम्मिलित हैं ।

इलेपिडी परिवार में बड़े-बड़े विषधर कोबरा हैं । इनमें १५ इंच का ग्रास्ट्रेलियन कोबरा भी है जिसके काटने पर एक मधु-मक्खी से ग्रधिक पीड़ा नहीं होती ग्रौर जो घातक भी नहीं होता । दूसरी ग्रोर २०, २५ ग्रौर २८ फुट तक के विशालकाय नाग ऐसे कातिल होते हैं जिनके विष की एक ही बूंद दर्जनों व्यक्तियों को पलक मारते ही मृत्यु के मुख में पहुँचा देने के लिए काफी है । इनके रंगों में भी काफी विविधता रहती है । कहीं तो मरुस्थल की रेतीली भूमि से इनका रंग बिलकुल मिल जाता है, कहीं (ग्रफ्रीकी मम्बा) चमकीले हरित वर्ण के होते हैं तो कहीं चटख लाल, काले, पीले, चमकीले छल्लों की चित्रकारीयुक्त (कोरलस्नेक) होते हैं ।

मरुस्थलीय कोबरा

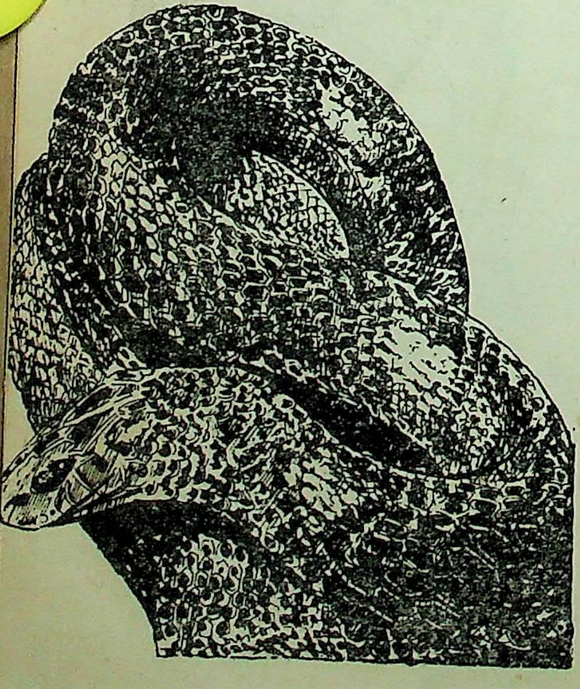

'कोबरा' शब्द पुर्तगाली कोबरा-डी-केपेलो (*cobra-de-capello*) शब्द से बना है जिसका ग्रर्थ है फणिधारी सर्प । पुर्तगालियों ने भारत के नागों से सामना पड़ने पर उन्हें यह नाम दिया था । एशिया, मलाया, फिलिपाइन, ग्रफ्रीका तथा संयुक्त राज्य ग्रमरीका में ग्रधिकांश पाये जाने वाले समस्त फणिधारी विषधरों को सामान्यतः कोबरा कहा जाता है । छिपकली, मेंढक, नन्हे पक्षी, छोटे-छोटे प्राणी, मछलियाँ तथा सर्प इनके मुख्य ग्राहार हैं ।

ग्रफ्रीकी नागों में कुछ छोटे फणिधर ऐसे भी होते हैं जो विष की तीखी पिचकारी का ३-४ फुट तक दूर खड़े शत्रु की ग्राँख पर ग्रचूक निशाना मारते हैं । दूसरे ही क्षण ग्राँख जलने लगती है ग्रौर यदि तुरन्त ही साफ पानी से धोने ग्रौर दवा डालने का प्रबन्ध न किया जाए तो ग्राँखों को स्थायी हानि पहुँच सकती है ।

ग्रफ्रीकी कोबरा बेहद चुस्त, चालाक ग्रौर तेज होते हैं । इनका विष ग्रत्यन्त तीव्र होता है । विस्कॉन्सिन (Wisconsin) के डा. ईजेनबर्गर (Eigenberger) तो एक बार इसके विष की ग्रति ग्रल्प मात्रा का प्रयोग ग्रपने ऊपर करते हुए मरते-मरते बचे थे । एक विपरीत उदाहरण ऐसा भी मिला है जिसमें सर्प द्वारा पूरा विषदन्त गड़ा देने पर भी व्यक्ति जीवित बच गया । जन्तुग्रों के प्रसिद्ध ग्रमरीकी चित्रकार लुई एगेसीज (Agassiz) को एबीसीनिया के प्रदेशों में घूमते हुए एक नाग से पाला पड़ गया था । उसने तीतर-कबूतर मारने वाले छर्रे कारतूस ग्रपनी बन्दूक से दाग दिये ग्रौर सामान्य ग्रमरीकी सर्प जानकर उसे उठा लिया । संयोगवश नाग जीवित बच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गुरुकुल कांगड़ी
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

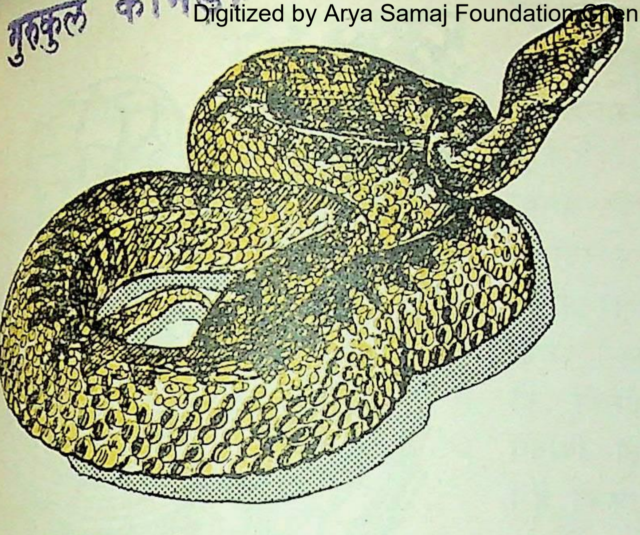

इजिप्शियन कोबरा-एस्प वाइपर

भारत में नाग के प्रति प्रबल धार्मिक भावना प्रचलित है। इतिहासकारों ने तपस्यारत बुद्ध को प्रखर सूर्य के ताप में नागफन द्वारा ही रक्षित होना कहा है। भारतीय पुराणों में समुद्र-मन्थन के लिए वासुकि नाग का, पृथ्वी को धारण करने के लिए शेषनाग का तथा महाभारत में तक्षक नाग का विशेष महत्त्व दर्शाया गया है।

गया था और हाथ पड़ते ही उसने अपना दाँत उसकी अँगुली में गड़ा दिया था। किन्तु आश्चर्य! या तो विष ही समाप्त हो गया था या रेत आदि से दाँत का मुँह रुक गया था जो एक बूँद भी विष न टपका!

अफ्रीकी नागों में नन्हा इलेप्स (Elaps) भी है। इसके शरीर पर स्याह-सफेद पट्टियाँ होती हैं। सौ-सवा-सौ से भी अधिक वर्ष हो गये, तत्कालीन जैव-वैज्ञानिकों की अल्पज्ञता के फलस्वरूप इन इलेप्स को ही नाग जाति का प्रतीक मानकर समूची जाति को इलेपिडी (Elapidae) नाम दे दिया गया। तब से यही नाम चला आ रहा है।

संसार की कोई भी नाग जाति इतनी प्रसिद्ध नहीं, जितनी भारत की। यह जाति नाजा-नाजा-नाजा (*naja-naja-naja*) के नाम से प्रसिद्ध है। 'नाजा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'नाग' शब्द से हुई है।

इसके फन का फैलाव सबसे अधिक है। इसकी गर्दन के दोनों ओर अतिरिक्त पसलियाँ तथा झूलती हुई त्वचा रहती है। वही उत्तेजित अवस्था में फणाकार फैल जाती है। फैला हुआ फन एक गोल पंखे जैसा दिखता है और उसके मध्य में दो लेन्सयुक्त चश्मे जैसी आकृति नजर आती है।

केवल छेड़े जाने पर अथवा पाँव के नीचे दब जाने पर अपनी सुरक्षा के लिए ही नाग फन फैलाकर काटने को उद्यत होता है। तब यह अपनी पूरी लम्बाई का एक तिहाई भाग एक रस्से की भाँति खड़ा कर लेता है। इसका वह काल रूप कैसे भी शूरवीर को भयभीत करने के लिए काफी है। भारत में अधिकतर ऐसी दुर्घटनाएँ पाँव के नीचे नाग आ जाने से ही होती हैं और नंगे पाँव चलने-फिरने का सर्वाधिक प्रचलन भी यहीं है। सर्पदंश से होने वाली मृत्यु का वार्षिक अंक भारत में जो पहले ३० हजार था, वह आज घटकर १० हजार रह जाने पर भी संसार के किसी भी देश के मुकाबले अति उच्च है। यहाँ की जनसंख्या के हिसाब से यह मृत्यु संख्या प्रति ३० हजार पर एक की

भारतीय कोबरा के फन पर क्रमशः उभरती हुई चश्माकार आकृति

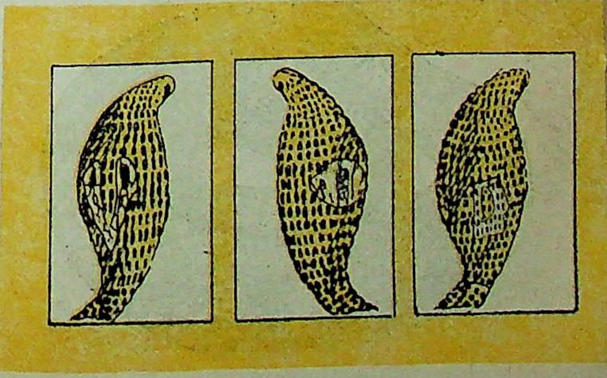

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जबकि ब्राजील में प्रति १० लाख पर एक का औसत है !

सामान्य श्रेणी के नाग भारत के मदारियों के प्रमुख जीवनाधार हैं। वे बड़ी कुशलता से इनके विषदन्त उखाड़कर अथवा विष निचोड़कर इन्हें अपनी टोकरियों में लिये-लिये बस्ती-बस्ती घूमते हैं और भावुक लोगों को केवल दर्शन कराकर तथा जिज्ञासुओं और विदेशी पर्यटकों को अपनी बीन के स्वरों पर इनकी विविध मुद्राएँ दिखाकर जीवनोपार्जन करते हैं। ज्योंही मदारी पिटारे का ढक्कन खोलता है, नाग अपना एक तिहाई शरीर खड़ा करके, फन फैलाये हुए मदारी को स्थिर दृष्टि से देखता रहता है। लोगों का खयाल है कि नाग बीन के स्वरों पर मोहित होता है किन्तु यथार्थ यह है कि सुनना इसके बस का नहीं। इसके कान ही नहीं होते ! यह

भारतीय नाग, सम्मुख दृश्य

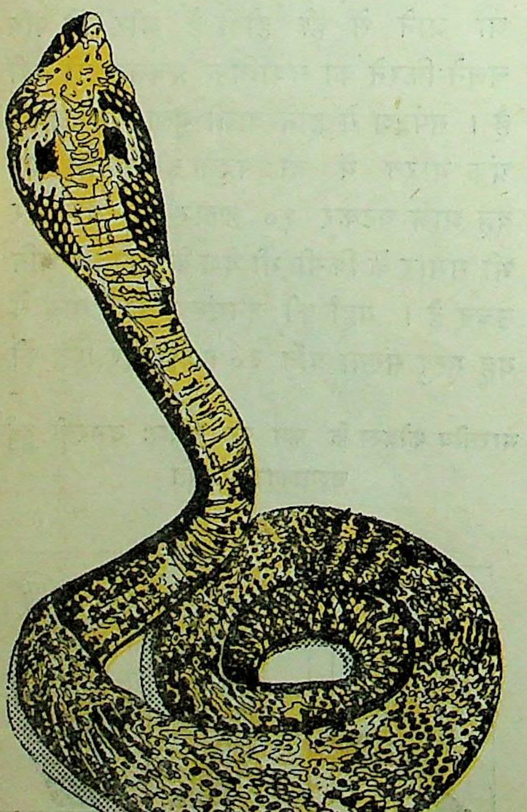

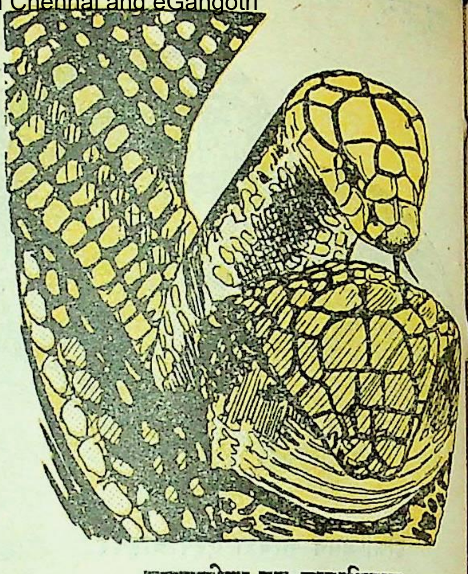

प्रणयक्रीडा-रत नागाधिराज

केवल बीन तथा मदारी के शरीर को हिलता-डुलता देख-देखकर उसी की नकल करता है। दिन के प्रकाश में तो यह सही निशाने पर चोट भी नहीं कर सकता।

इनमें भी प्रौढ़ की अपेक्षा अल्पवयस्क नाग अधिक उद्दण्ड, खतरनाक और फुर्तीले होते हैं। प्रौढ़ नाग तो बगैर आवश्यकता प्रायः वार नहीं करता, किन्तु नन्हे-मुन्ने हजरत तो अण्डे से पूरे बाहर निकल भी नहीं पाते कि आधे शरीर और फन से ही जिस-तिस पर चोट करते रहते हैं।

नागों में शिरोमणि नागाधिराज को किंग-कोबरा कहते हैं। आफियोफेगस (*Ophiophagus*) इनके पृथक् वंश का नाम है। यह नाम सूचित करता है कि ये सर्पभक्षी नाग हैं। डील-डौल में सबसे बड़े और रूप-स्वरूप में सबसे विकराल किन्तु नागाधिराज अपने घोंसले के निकट किसी को नहीं आने देते। घोंसला बनाकर रहना इन्हीं की प्रकृति है। नागरानी जहाँ-तहाँ से सूखे पत्ते, घास, तिनके, टहनियाँ कूड़ा-कचरा बटोर लाती है और दुमंजिला घोंसला बनाती है। नीचे की मंजिल में अण्डे सहेजे रहती है और ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंजिल में खुद निगरानी पर तैनात रहती है।

आस्ट्रेलिया के नागों में १२-१५ फुट लम्बे टाइगर स्नेक (Tiger Snake) और टेइपन स्नेक (Taipen Snake) प्रसिद्ध हैं। टेइपन स्नेक का काटा प्राणी २-३ मिनटों में ही समाप्त हो जाता है। टाइगर स्नेक की मादा नाग जाति में बहुत कम पायी जाने वाली उन जातियों में है जो अण्डे न देकर पूरे शिशु-नाग ही प्रसव करती हैं। ये एक बार में ७०-७२ बच्चे देती हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका में विषधर नाग केवल कोरल स्नेक पाये जाते हैं। इनके शरीर पर काले, पीले और लाल छल्ले रहते हैं। इनकी थुथनी काली होती है। थुथनी तथा छल्लों के रंगों का विशिष्ट क्रम ही इन्हें पहचानने में सहायक होता है। सामान्य विषहीन कोरल स्नेक भी पाये जाते हैं।

जैसे जंगल का शासक सिंह है वैसे ही सर्पजगत का शासक नाग है जो अपनी दुनिया का एक छत्रधारी सम्राट् है।

मोर्स-टेलीग्राफ की प्रथम सफलता

मोर्स-टेलीग्राफी को लोकप्रिय बनने में प्रारम्भिक काल की एक घटना से बहुत बल मिला था। टाबेल नामक एक व्यक्ति किसी अनजन पर अपनी प्रेयसी को विष देकर स्लफ स्टेशन से ट्रेन में सवार होकर लन्दन को भाग निकला। परन्तु पीछे से भेजे गये टेलीग्राफ संदेश की गति उसके भागने की गति से कहीं अधिक निकली और अधबीच में ही ट्रेनयात्रा के बदले जेलयात्रा उसके गले पड़ गयी।

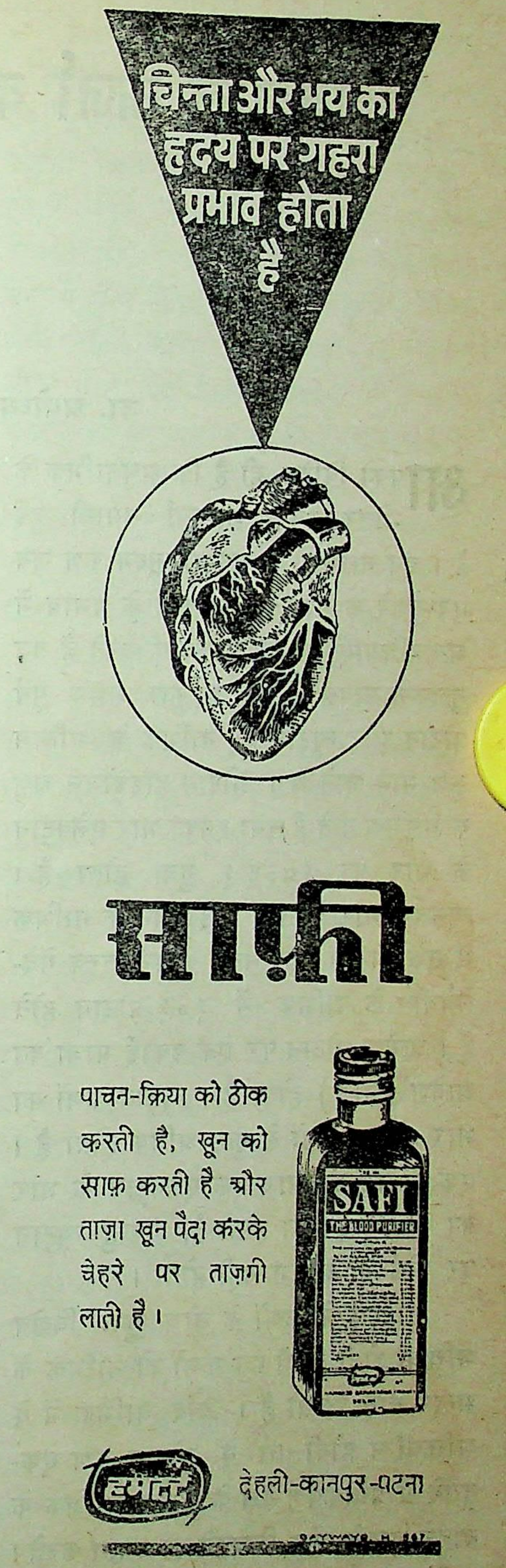

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल ऊर्जा कणों का निर्माण

डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा

आपको विदित ही है कि अणुनाभिक के भीतर प्रचण्ड शक्तियाँ समायी हुई हैं। इन नाभिकों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण जब एक-दूसरे के साथ इन शक्तियों के प्रभाव में अन्तरक्रियाएँ अर्थात् प्रक्रियाएँ करते हैं तब मूलकण उत्पन्न होते हैं। कुछ समय पूर्व प्रोटान और न्यूट्रान ही नाभिक के अन्तिम कण माने जाते थे। प्रोटान हाइड्रोजन अणु के नाभिक होते हैं तथा इनका भार एलेक्ट्रान के भार का १८३६·१ गुना होता है। न्यूनतम भार के तत्त्व हाइड्रोजन के नाभिक में एक प्रोटान तथा सबसे भारी तत्त्व मेंदेलेयेवीत के नाभिक में १०१ प्रोटान होते हैं। प्रत्येक प्रोटान पर एक इकाई मात्रा का आवेश (चार्ज) होता है। न्यूट्रान कणों का भार प्रोटान कणों से कुछ अधिक होता है। एक न्यूट्रान का भार एक एलेक्ट्रान के भार का १८३८·६ गुना होता है, परन्तु न्यूट्रान पर कोई भी आवेश नहीं होता।

नाभिक के कणों के बीच कुछ विशेष शक्तियाँ होती हैं जो इन कणों को नाभिक के अन्दर बाँधे रखती हैं। यदि नाभिक में ये शक्तियाँ न होतीं तो ये प्रोटान कण एक-दूसरे से प्रतिकर्षण बल के कारण नाभिक के बाहर भागने और बिखरने का प्रयत्न करते। नाभिक के भीतर की इन प्रचण्ड शक्तियों के स्वरूप को तो अभी तक पूरी तरह से खोजा नहीं जा सका है, परन्तु इतना अवश्य है कि इन शक्तियों के कारण ही नाभिक कणों के आपस में तेजी से टकराने की अन्तरक्रियाओं के फलस्वरूप नवीन प्रकार के मूलकण उत्पन्न हो जाते हैं जिनकी ऊर्जा बहुत अधिक होती है। उदाहरणतः पाई-मेसान नामक कण एलेक्ट्रान से २७३ गुना तथा म्यू-मेसान कण २०७ गुना भारी होते हैं। यह मेसान धनात्मक, ऋणात्मक अथवा आवेश रहित सभी तरह के होते हैं। इनके अतिरिक्त इन अन्तरक्रियाओं में भारी मेसान भी जन्म लेते हैं जिनका भार एलेक्ट्रान के भार का लगभग ९६० गुना होता है। यह भी सभी आवेश के होते हैं। इतना ही नहीं, कुछ ऐसे मूलकण भी इन्हीं प्रक्रियाओं की देन हैं जिनका भार एक प्रोटान तथा दो प्रोटान वाले नाभिक ड्यूट्रान के बीच होता है। इन विशेष भारी कणों को हाइपेरान के नाम से पुकारते हैं तथा इनका भार एलेक्ट्रान के भार का लगभग २१०० से लेकर २५०० गुना होता है।

पदार्थ वैज्ञानिकों ने अब तक जिन मौलिक अथवा मूलकणों की खोज की है उनमें ये मूलकण मुख्य हैं: फोटान, न्यूट्रिनो, एलेक्ट्रान, प्रोजीट्रान, विभिन्न प्रकार के मेसान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा हाइपरान । इनके अतिरिक्त विपरीत मूलकणों का भी एक अनोखा विश्व खोजा जा चुका है । मुख्य विपरीत मूलकण हैं : एलेक्ट्रान का पोजीट्रान, प्रोटान का एन्टी-प्रोटान, न्यूट्रिनों का एन्टीन्यूट्रिनो, न्यूट्रान का एन्टीन्यूट्रान तथा मेसान के विपरीत मूलकण एन्टीमेसान ।

अणु के राज्य में घटित प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने के लिए वैज्ञानिक आइन्स्टीन का सापेक्षतावाद सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण है । इसके आधार पर अब द्रव्य और ऊर्जा में कोई भी अन्तर शेष नहीं रह गया है; क्योंकि वे एक ही मूल सामग्री के दो भिन्न पहलू हैं । इसमें यह सिद्ध किया गया है कि भार, गति, ऊर्जा और द्रव्य के अन्य गुण कितनी घनिष्ठता से परस्पर आधारित हैं । वैसे तो प्रत्येक मूलकण में अपने स्वयं के स्थिर भार के कारण एक निश्चित ऊर्जा होती ही है, फिर भी यह ऊर्जा उस समय विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाती है जबकि कोई कण अधिक से अधिक गति से दौड़ रहा हो। उदाहरणत: एक एलेक्ट्रान का स्थिर भार एक इकाई मात्रा माना जाता है जबकि वह स्थिर स्थिति में होता है परन्तु जब उसकी गति प्रकाश गति की ५० प्रतिशत कर दी जाती है तब एलेक्ट्रान का भार ११ प्रतिशत बढ़ जाता है और जब एलेक्ट्रान की गति प्रकाश गति की ९० प्रतिशत होती है उस समय एलेक्ट्रान का भार अपने स्थिर भार का सवा गुना हो जाता है । यहाँ तक कि यदि गति ९८ प्रतिशत कर दी जाए तो एलेक्ट्रान का भार स्थिर भार का ५ गुना हो जाएगा । गणित द्वारा आसानी से यह हिसाब लगाया जा सकता है कि भार बढ़ने से एलेक्ट्रान की ऊर्जा में एक अनोखी बढ़ोतरी हो जाएगी । अत: यह स्पष्ट है कि विशाल ऊर्जा के कण अवश्य ही अधिकतम गति से चलने वाले कण होते होंगे ।

विस्मय की बात है कि अब तक आकाश की ओर से आने वाली अंतरिक्ष किरणें ही इन मूलकणों की प्रधान स्रोत रही हैं । पदार्थ वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष में गुब्बारे, हवाई जहाज, राकेट तथा कृत्रिम उपग्रह भेजकर अंतरिक्ष किरणों के इन मूलकणों का अनुपम शोध किया है तथा अणुनाभिक और अन्य जटिल नाभिक प्रक्रियाओं की रचना और गुणों पर विशेष प्रकाश डाला है । वैज्ञानिकों का कहना है कि कुछ मूलकण विविध आकाशगंगाओं के मध्य उपस्थित चुम्बकीय क्षेत्र में विशेष त्वरण पाकर काफी गति धारण कर लेते हैं और अन्तरिक्ष में आकर वायुमंडल की गैस के अणुओं से टकराकर विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा विशाल ऊर्जा के अनेक प्रकार के मूलकण उत्पन्न कर देते हैं। प्रकृति द्वारा उत्पन्न इन मूलकणों की बौछार हमारी पृथ्वी पर प्रतिक्षण ही होती रहती है । इन मूलकणों की ऊर्जा को आज-कल ऊर्जा की एक नयी इकाई एलेक्ट्रान वोल्ट में नापा जाता है। एक एलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा उस ऊर्जा के मान के बराबर होती है जो इकाई वोल्ट के ऊर्जा त्वरण क्षेत्र में एक एलेक्ट्रान के चलने में उस एलेक्ट्रान में आ जाती है । ऊर्जा की यह महत्त्वपूर्ण इकाई साधारण उपयोग के लिए बहुत ही छोटी होती है परन्तु अणु के राज्य में और नाभिक प्रक्रियाओं में यह एक बहुत सुभीते की इकाई है ।

मानव भी प्रकृति से पीछे नहीं

प्रकृति द्वारा उत्पन्न अन्तरिक्ष किरणों पर शोध करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । प्रथम, सभी प्रकार के मूलकणों की बौछार पृथ्वी की ओर होती रहती है, अत: उनकी अलग-अलग छाँट करने के पश्चात् ही उन पर शोध कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जा सकता है। द्वितीय, औसतन केवल एक अंतरिक्ष-किरण-कण प्रति मिनट वायु के एक घन सेंटीमीटर आयतन में से होकर गुजरता है। इतना ही नहीं, वैज्ञानिकों को कभी-कभी तो महीनों प्रतीक्षा करने के पश्चात् कहीं किसी विशेष कण पर पुनः जाँच करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार की अनेक कठिनाइयाँ सामने आती हैं।

परन्तु अब मानव ने आधुनिक आणविक यंत्रों द्वारा प्रत्येक प्रकार के मूलकणों के निर्माण करने का साधन प्राप्त कर लिया है ताकि इन मूलकणों पर शोध कार्य सुगमता से चल सके। मानव ने अब प्रकृति की अंतरिक्ष प्रक्रियाओं को पुनर्निमित करने वाले प्रतिष्ठानों को तैयार कर लिया है जिनको एक्सीलरेटर के नाम से पुकारते हैं। इन एक्सीलरेटर मशीनों द्वारा अधिक गति और विशाल ऊर्जा वाले मूलकण उत्पन्न कर लिये जाते हैं।

लगभग २८ वर्ष पूर्व सर्वप्रथम कोक्राफ्ट वाल्टन नामक एक्सीलरेटर का निर्माण कोक्राफ्ट और वाल्टन नामक दो ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने किया था। इससे लगभग दस लाख एलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा के कण उत्पन्न किये जा सकते थे। इसके बाद साइक्लोट्रान और बीटाट्रान ने स्थान ग्रहण किया। इन मशीनों द्वारा लगभग डेढ़ करोड़ एलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा के कण निर्मित किये जा सकते हैं।

वैज्ञानिक एक ओर तो प्रकृति के अंतरिक्ष कणों का शोध करता रहा और साथ ही साथ दूसरी ओर वैसे ही कण स्वयं अपनी प्रयोगशाला में उत्पन्न करने का प्रयत्न करता रहा। इस प्रयत्न में प्रकृति से होड़ की भावना मानव के मस्तिष्क में अवश्य ही रही होगी। फलस्वरूप १९४४ में रूस के वेक्स्लेर तथा १९४५ में अमरीका के मैकमिलन नामक वैज्ञानिकों ने ऑटोफेजिंग का एक नवीन सिद्धान्त निकाला जिसके आधार पर सिंक्रोट्रान, सिंक्रोसाइक्लोट्रान तथा प्रोटान सिंक्रोट्रान नामक एक्सीलरेटर तैयार किये जा सके। इन यंत्रों द्वारा अधिक गति वाले विशाल ऊर्जायुक्त मूलकण तैयार किये जाते हैं। संसार का सबसे बड़ा सिंक्रोसाइक्लोट्रान रूसी वैज्ञानिकों द्वारा १९५० में बनाया गया था। इसके द्वारा प्रोटान कणों को ६८ करोड़ एलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा तक त्वरणशील बनाया जाता है।

मनुष्य और प्रकृति की यह अनोखी होड़

वैज्ञानिक द्वारा विभिन्न प्रकार के एक्सीलरेटरों के निर्माण तथा उनसे उत्पन्न विशाल ऊर्जा के मूलकणों की बात केवल एक कहानी ही नहीं है, बल्कि प्रकृति के साथ अथवा अंतरिक्ष किरणों के साथ मनुष्य की यह एक अनोखी होड़ है।

वैज्ञानिक इन विशाल ऊर्जा के कणों को इसलिए पाना चाहता है ताकि वह इनको बहुत-सी नाभिक प्रक्रियाओं के शोध में काम ला सके। वह चाहता है कि उसे द्रव्य की स्पष्ट रचना तथा विवरणयुक्त कल्पना का पूरा ज्ञान हो जाए और उसके भीतरी गर्भ की अद्भुत प्रक्रियाओं का सही-सही विश्लेषण हो सके।

मनुष्य अपने ज्ञान को निरंतर आगे बढ़ाना चाहता है। उसकी कल्पना है कि कहीं प्रोटान और न्यूट्रान कणों के भीतर भी ऐसी दुनियाएँ न निकल पड़ें जो आकाश-गंगाओं की तरह जटिल व गूढ़ हों। वह अणु की जटिलता और अनन्तता का सही-सही ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। वैज्ञानिक ने प्रकृति में अगणित आश्चर्यजनक चीजें खोजी है। वह उनकी जानकारी अपनी प्रयोगशाला में तथा उससे बाहर जहाँ भी संभव हो सकता है प्राप्त करने का सदैव प्रयत्न करता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेन्द्रकुमार

प्रकृति के अगम स्थलों तक पहुँचने और उसके अबूझ रहस्यों को खोजने की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वभावगत है। महान् सिकन्दर ने भी सागर में गहरे उतरने की सोची थी और वह उतरा भी था। उल्लेख है कि उसने काँच के एक बन्द गोले में बैठकर गहरे सागर में डुबकी लगायी थी और व्हेल की झाँकी पाकर रोमांचित हो उठा था। यों एक प्रकार से पनडुब्बी की कल्पना का सूत्र ईसा से लगभग ३०० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ माना जा सकता है।

प्रारम्भिक पनडुब्बियाँ

पनडुब्बी की कल्पना का वह बीज करीब २००० वर्ष तक दबा पड़ा रहा। १७वीं शताब्दी में उसमें पुनः अंकुर फूटने लगे और पनडुब्बी बनाने के प्रयोगों की श्रृंखला चल पड़ी। ब्रिटिश सम्राट् जेम्स प्रथम के राज्यकाल में १६२० से १६२६ तक हालैण्ड के एक चिकित्सक, डा. कर्नेलियस वान ड्रेबेल (Cornelius Van Drebbel) ने अनेक प्रयोगों के पश्चात् प्रथम माडल स्वरूप एक पनडुब्बी बनायी थी जिसमें बैठकर उसने टेम्स नदी में अनेक प्रदर्शन किये। १२ व्यक्तियों के बैठने योग्य वह पनडुब्बी अत्यन्त सामान्य नाव सरीखी थी। यह केवल चमड़े से मढ़ी हुई एक बड़ी मशक जैसी थी और जिसके डांड भी जलरोधक थे। तत्पश्चात् अमरीकी आन्तर्विग्रह के वर्ष के मध्य १७७६ में डेविड बुशनेल (David Bushnell) ने टर्टल (Turtle) अर्थात् कछुआ नामक जो पनडुब्बी बनायी, वह बहुत कुछ आधुनिक पनडुब्बियों की प्रवर्तक मानी गयी। खड़े हुए एक बड़े अण्डे जैसी उस पनडुब्बी का ऊपरी ढक्कन खोलकर चालक उसमें बैठ सकता था। ऊपर की तरफ आठ रोशनदान लगे थे ताकि बाहरी दृश्य भी देखा जा सके। पनडुब्बी को गहरे उतारने के लिए एक पैडिल दबाकर उसमें पानी की जरूरी मात्रा प्रवेश करायी जा सकती थी। पुनः ऊँची उठाने के लिए एक हस्तचालित पम्प द्वारा उस पानी को बाहर निकाला जा सकता था। पनडुब्बी को आगे बढ़ाने तथा ऊपर उठाने के लिए १-१ हस्तचालित पंखा भी लगा हुआ था।

युद्ध के उन दिनों में पनडुब्बी द्वारा युद्धपोत डुबाने का प्रथम किन्तु असफल प्रयोग बुशनेल ने ही किया था। ईगल (Eagle) नामक ब्रिटिश जहाज के पेंदे तक तो वह अपनी टर्टल पनडुब्बी ले जाने में सफल हो गया किन्तु पेंदे में जड़ी हुई ताँबे की मोटी चद्दरों को छेदना और उसमें विस्फोटक रख देना सम्भव न हो सका। अतः विस्फोटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

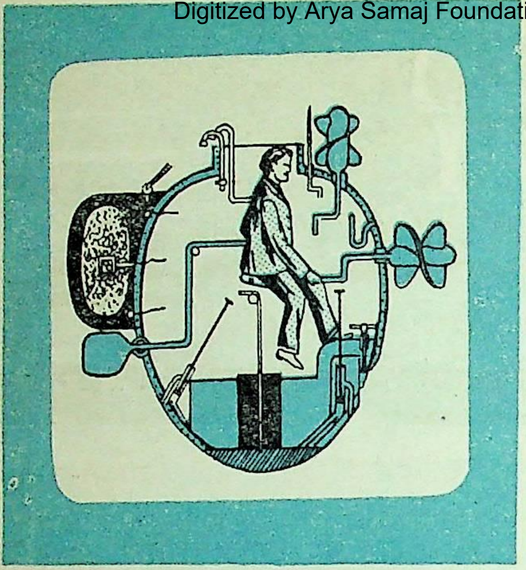

डेविड बुशनेल-निर्मित हस्तचालित तथा एक व्यक्ति-वाहक प्रारम्भिक पनडुब्बी

अपने निर्धारित समय पर व्यर्थ ही फट गया और शत्रुओं से बचकर भाग निकलने में बुशनेल की जान पर आ बनी थी।

तीसरा प्रयोग सम्राट् नेपोलियन के संरक्षण में स्टीमबोट के आविष्कर्ता राबर्ट फल्टन ने किया। फल्टन भी अमरीकी वैज्ञानिक था किन्तु बुशनेल की भाँति लम्बे समय से वह अपने प्रयोग फ्रांस में ही कर रहा था। १८०१ में अपनी 'नाटिलस' नामक पनडुब्बी से उसने अनेक प्रदर्शन किये थे। आज की परमाणुशक्ति-चालित नाटिलस पनडुब्बी और फल्टन की नाटिलस में सिद्धान्ततः काफी समानता होने से दोनों के नाम में भी समानता है। फल्टन के पास तो पोत-विध्वंसक पनडुब्बियों के अनेक नुस्खे थे, किन्तु फ्रांस अथवा इंग्लैण्ड कोई भी प्रोत्साहन देने को तैयार न हुआ।

प्रथम पोत-विध्वंसक पनडुब्बी

अमरीकी युद्धकाल के मध्य डेविड्स (Davids) नामक अनेक हस्तचालित पनडुब्बियाँ बनायी गयीं जो जहाजों को डुबाने के काम आती थीं। उन में हनले (Hunley) [illegible] हुसैटोनिक (Housatonic नामक जहाज को सफलतापूर्वक डुबा था, किन्तु दुर्भाग्यवश उसे भी अप नाविकों समेत उसी के साथ जल-समाधि लेनी पड़ी थी। पायनीयर (Pioneer पनडुब्बी भी ऐसे ही शिकार करते-करते स्व शिकार हो गयी थी। उसे समुद्र की कै से छुड़ाकर न्यू आरलियन्स के राजकी अजायबघर में रखा गया है।

तब से पनडुब्बियाँ बनाने के प्रयासों की गति भी बढ़ती गयी। देश-विदेशों में नये-नये प्रयोग होते गये और नये-नये माडल सामने आते गये। अनेक संशोधनों और परिवर्तन के पश्चात् पनडुब्बी का आधुनिक स्वरूप बन पाया है।

आधुनिक पनडुब्बी

पनडुब्बी का मुख्य आधार अन्तर्दाह इंजन है। प्रारम्भिक स्टीम इंजन भारी-भरकम तथा कम सुविधाजनक होते थे उनके स्थान पर गैसोलीन इंजन प्रारम्भ किये गये परन्तु उन्हें भी हानिकारक समझकर हटा देना पड़ा। सामान्यतः पनडुब्बी में चार डीजल इंजन लगाये जाते हैं। वे डीजल इंजन जनरेटर को चलाते हैं। जनरेटरों से बिजली उत्पन्न होती है। उस बिजली द्वारा चालित मोटरें पंखों को चलाती हैं। प्रारम्भ में यह कठिनाई अवश्य प्रतीत हुई थी कि पानी के नीचे ही नीचे रहने से डीजल इंजनों को पर्याप्त मात्रा में बाहरी हवा नहीं मिलती थी।

बाद में इसका भी हल खोज लि गया और बीच-बीच में पनडुब्बी को पा से ऊपर लाया जाने लगा। द्वितीय महायु की समाप्ति के निकट, जर्मनी ने इ असुविधा को भी अपने नये आविष्क से मिटा दिया। अब २५ फुट लम्बे श्वस पाइप जिन्हें स्नार्कल (snorkel) कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पनडुब्बियों में लगने लगे । ये पाइप ताजा हवा के श्वसन तथा निष्क्रिय गैस के निष्कासन का काम करते थे । आवश्यकतानुसार इन पाइपों को लिटाया भी जा सकता है । ऐसे ही स्नार्कल पाइप लगाकर एक अमरीकन नाविक ने हाँगकाँग से पर्ल हार्बर तक १२०० मील की दूरी पनडुब्बी को ऊपर लाये बिना ही पानी के अन्दर ही अन्दर तय की थी ।

आधुनिक पनडुब्बी को काफी मजबूत बनाया जाता है ताकि वह पानी के अत्यधिक दबाव को सह सके । एक सिरे से दूसरे सिरे तक इसे अनेक वाटरटाइट कक्षों में बाँटा जाता है । वे कक्ष पानी, तेल, ईंधन आदि जमा रखने के काम में आते हैं ।

पनडुब्बी में बैठे हुए, पानी के अन्दर ही से बाहर देखने के लिए पेरिस्कोप (periscope) नामक विशिष्ट दूरदर्शी रखना पड़ता है । यह दूरदर्शी एक चिमनी जैसा, लेन्सों तथा दर्पणों की सरल सज्जायुक्त होता है । इसके ऊपर का सिरा पानी के बाहर निकला हुआ तथा समुद्री सतह के समानान्तर मुड़ा हुआ रहता है । उस सिरे को चाहे जिस दिशा में घुमाया जा सकता है ताकि चारों ओर का दृश्य प्राप्त हो सके ।

अद्भुत परमाणु-पनडुब्बी—नाटिलस

संयुक्त राज्य अमरीका के नौसेना विभाग ने संसार की प्रथम परमाणुशक्ति-चालित पनडुब्बी नाटिलस २१ जनवरी १९५४ को सागर में उतारी । यद्यपि उसके प्रारम्भिक प्रयोगों में कुछ कठिनाइयाँ प्रतीत हुईं फिर भी उसकी कार्यक्षमता इतनी अद्भुत थी कि उसे ज्यों का त्यों आधुनिक आणविक पनडुब्बी का सही प्रतीक मान लिया गया । अब अमरीका तथा अन्य देश और भी ऐसी आणविक पनडुब्बियाँ बनाने में लगे हुए हैं ।

इस पनडुब्बी का वायु-नियंत्रण विलक्षण है । इसमें आक्सीजन का उत्पादन तथा कार्बन डाइआक्साइड का निष्कासन स्वतः होता है । इसे किसी भी लम्बे समय तक पानी के अन्दर ही रखा जाए तो भी इसके नाविकों तथा यात्रियों को कोई असुविधा न होगी । इसी में सोनार यंत्र भी रहता है जो मार्ग की रुकावटों का पूर्वाभास देता रहता है और पनडुब्बी को चाहे जिसकी टक्कर से बचा लेता है ।

एक बार का ईंधन ६० हजार मील की यात्रा के लिए पर्याप्त है । पानी के अन्दर ही अन्दर लम्बे समय तक चलते रहने का इसका एक रिकार्ड यह है कि एक आणविक पनडुब्बी ६ अक्टूबर १९५८ को पूरे ६० दिन पानी में रहकर उभरी थी । इससे यह उपयोगी तथ्य प्राप्त हुआ है कि आक्सीजन की आवश्यक एवं उचित व्यवस्था हो तो मनुष्य अन्तरिक्ष में भी लम्बे समय तक रह सकता है ।

संसार-प्रसिद्ध परमाणु-पनडुब्बी नाटिलस का भीतरी संरचना प्रदर्शक दृश्य

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

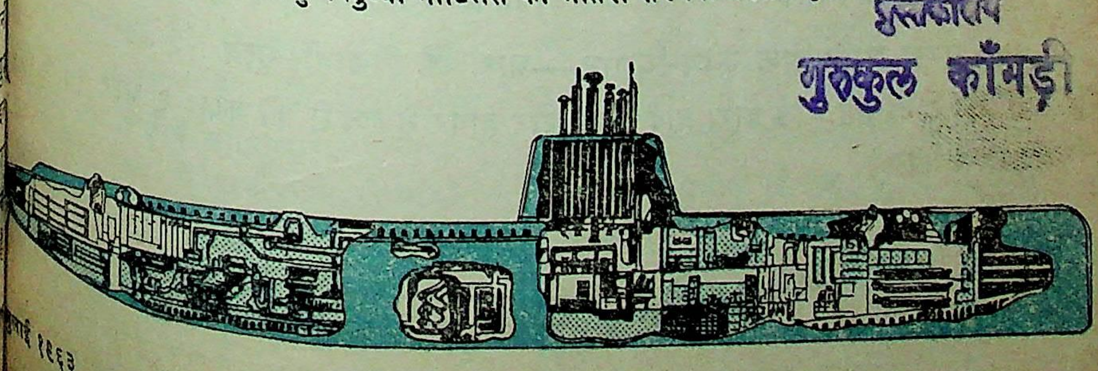

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोगों की अनन्त सम्भावनाएँ

सामान्यतः पनडुब्बियों का एकमात्र उपयोग युद्धकाल में शत्रुपोतों को डुबाना माना जाता है। आणविक पनडुब्बी की उपयोगिता शान्तिकाल में अन्तरिक्ष-अभियानों से कम रोचक न होगी। इसके द्वारा संभव होगा कि लन्दन से टोकियो तक की दूरी आधी कर दी जाए क्योंकि यह उत्तरी ध्रुव की बर्फीली चादर (ice cap) के नीचे ही नीचे अपनी मंजिल तय कर लेगी। तभी यह भी होगा कि यात्रीगण समुद्री सतह के तूफानों से बचे रहेंगे क्योंकि जल की गहराई में तूफानों का प्रभाव नहीं होता। अतः यात्रीगण पानी के अन्दर की ही यात्रा अधिक पसन्द करेंगे।

आज प्रारम्भिक अवस्था में इन आणविक पनडुब्बियों का निर्माण बेहद महँगा अवश्य प्रतीत होता है किन्तु निकट भविष्य में इन्हीं के द्वारा व्यापारिक वस्तुओं का वहन-परिवहन अधिक प्रचलित होने पर समुद्री दूरियाँ आश्चर्यजनक रूप से घटायी जा सकेंगी।

हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. **जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

२. **वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

३. **प्रारम्भिक भौतिकी**—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३·५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

४. **प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

५. **प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

६. **सामान्य विज्ञान**—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६·२५

७. **सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५·००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ९ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

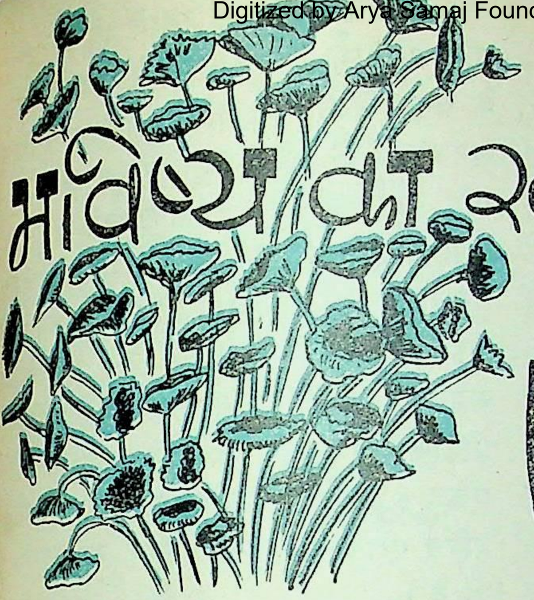

भविष्य का खाद्य पदार्थ एलगी

डा. शिवगोपाल मिश्र

अनुमान है कि २०वीं शताब्दी के अन्त तक संसार की जनसंख्या ५०० करोड़ हो जाएगी। तब उस वृहत् जन समुदाय के लिए खाद्य की व्यवस्था करना एक समस्या बन जाएगा। यदि अभी से हल न खोजा गया तो जीवनधारण कठिन हो जाएगा। पिछले वर्षों वैज्ञानिकों ने इस बारे में अनेक उल्लेखनीय प्रयास किये हैं और 'हरित एलगी' को एक नवीन खाद्यपदार्थ के रूप में प्रस्तावित किया है।

हरित एलगी अत्यन्त सूक्ष्म और एक-कोशीय वनस्पति है। इसकी अनेक किस्में नदियों, झीलों तथा तालाबों में उगायी जा सकती हैं। इनकी उचित उपज तथा विकास के लिए उपयुक्त ताप, पर्याप्त सूर्य प्रकाश तथा भोज्य तत्त्वों की उच्च सान्द्रता (जिसमें कार्बनिक अम्ल की अनवरत पूर्ति होती रहती है) आवश्यक हैं। ये भोज्य तत्त्व विलयन रूप में होने चाहिए।

हरित एलगी में पुनरुत्पादन की प्रक्रिया कोशाविभाजन द्वारा होती है। समशीतोष्ण प्रदेशों में २४ घंटे में इसके कोश १ से १६ तक विभाजित हो जाते हैं। इस प्रकार जो नये कोश बनते हैं वे 'ऑटोस्पोर्स' (autospores) कहलाते हैं। विशिष्ट परिस्थितियों में इनका उत्पादन दो-गुना से बढ़कर सैकड़ों हजारों-गुना तक बढ़ सकता है। एलगी में वसा, प्रोटीन, शर्करा तथा कुछेक उपयोगी विटामिन भी पाये जाते हैं।

कुछ समय पूर्व एलगी की खेती अधिकतम वसा प्राप्त करने के लिए की जाती थी। अब इससे प्रोटीन भी प्राप्त करने का लक्ष्य है। एलगी का उत्पादन जो प्रयोगशाला तक सीमित था, अब खुले मैदानों में आ गया है। जर्मन डा. गुमर्ट कोक की भट्ठी से गैस-उत्पादन के समय उत्पन्न कार्बन डाइआक्साइड के उपयोग का व्यावहारिक मार्ग खोजने में लगे थे तभी एलगी के विकास की ओर भी उनका ध्यान गया। मैक्स प्लांक इंस्टीट्यूट के न्यूट्रीशन फिजियोलाजी विभाग के डा. हाइनरिश डार्टमुण्ड ने एलगी-उत्पादन की विधियाँ प्रस्तुत की हैं। ऐसे ही प्रयोग जापान, अमरीका तथा इजरायल में भी हो रहे हैं। इन प्रयोगों के फलस्वरूप अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर एलगी का वृहत् उत्पादन सम्भव हो गया है और आहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप में उसका उपयोग किये जाने की सम्भावनाओं पर विचार किया जाने लगा है।

मैक्स प्लांक इंस्टीट्यूट में हरित एलगी का विकास कार्य खुले वायुमण्डल के नीचे बड़े-बड़े तालाबों में होता है। प्रत्येक वर्ष प्रथम छमाही के प्रारम्भ में 'सेनेडेस्मस आब्लिक्स' नामक प्रजाति के संवर्ध तालाबों में डाल दिये जाते हैं। जल का ताप २५-३०°C तक रखा जाता है और उसमें पोषक तत्त्व भी मिलाये रखते हैं। उसी में कार्बन डाइग्राक्साइड भी प्रविष्ट करायी जाती है। प्रकाश की भी उचित व्यवस्था रखते हैं।

हरित एलगी के संवर्धो के विकसित होने के अनन्तर उन्हें एकत्रित करना पड़ता है। इसके लिए ५०-७५% जल को तालाबों में से पम्प द्वारा निकाल दिया जाता है और बचे हुए निलम्ब को (जिसमें हरित एलगी रहती है) सेंट्रीफ्यूजित करके छान लिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त सम्पूर्ण छनित को पुनः तालाबों में पहुँचाकर जल में आवश्यक पोषक तत्त्व मिला दिये जाते हैं। वाष्पीकरण से जितना जल कम हो जाता है, उसकी भी पूर्ति कर दी जाती है।

छानने से जो दलदल जैसा पदार्थ प्राप्त होता है उसे सुखाकर चूर्ण बना लिया जाता है। चूर्ण का रंग काई जैसा और जायका तीते पालक जैसा होता है। एक सप्ताह में २-३ बार करके एलगी को एकत्र किया जाता है। अनुमान है कि तालाब की १ वर्ग मीटर सतह से प्रतिदिन ८-१० ग्राम शुष्क एलगी प्राप्त हो सकती है। अधिक अनुकूल परिस्थितियों में यह मात्रा १०-१५ ग्राम तक भी हो सकती है। यदि इसे प्रति एकड़ के अनुसार कहें तो प्रतिवर्ष ७ टन से अधिक की उपज होगी।

जापानी पद्धति से उगाये गये क्लोरेला तथा सेनेडेस्मस आब्लिक्स में शुष्क पदार्थ के अनुसार ५०-६० प्रतिशत प्रोटीन अर्थात् लगभग ४ टन प्रोटीन प्रति एकड़ रहता है। यदि उतने ही क्षेत्रफल में उपजने वाले गेहूँ तथा आलू से प्राप्त प्रोटीन से इस मात्रा की तुलना की जाए तो ज्ञात होगा कि एलगी में कई गुना अधिक प्रोटीन है। यूरोप की समस्त फसलों में चुकन्दर ही सर्वाधिक प्रोटीन देता है। चुकन्दर की फसलों से प्रति एकड़ ०·४४ टन प्रोटीन प्राप्त होता है जो हरित एलगी से प्राप्त प्रोटीन का नवमांश ही है।

प्रोटीन की प्रचुरता के कारण हरित एलगी एक उत्तम आहार सिद्ध होती है। यदि इसमें उपलब्ध एमिनो अम्लों की मात्रा को मूल्यांकन का आधार मानें तो ज्ञात होगा कि यह मटर में पाये जाने वाले वानस्पतिक प्रोटीन के समतुल्य है। एमिनो अम्लों की दैनिक आवश्यकता की पूर्ति १०० ग्राम शुष्क हरित एलगी से सरलतापूर्वक हो सकती है। इसी मात्रा से विटामिन (विशेषतया बी-१२) की भी पूर्ति हो सकती है। केवल विटामिन 'सी' ऐसा है जो इसे सुखाते समय नष्ट हो जाता है।

चूहों तथा मुर्गियों पर किये गये प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि आमाशय के लिए हरित एलगी विशेष उपयुक्त है। वे प्रयोग मनुष्यों पर भी ठीक सिद्ध होते हैं। पशुओं को दिये जाने वाले आहार में पशु प्रोटीन (दुग्ध प्रोटीन) के स्थान पर एलगी प्रोटीन देने पर उनके भार में समान वृद्धि पायी गयी। इस प्रकार यह खमीर तथा आलू के प्रोटीन से भी श्रेष्ठ सिद्ध हुई है।

छछूंदरों के साथ कुछ विशिष्ट प्रयोग किये जाने पर छः मास के उपरान्त उनके भार में वृद्धि देखी गयी है। हरित एलगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

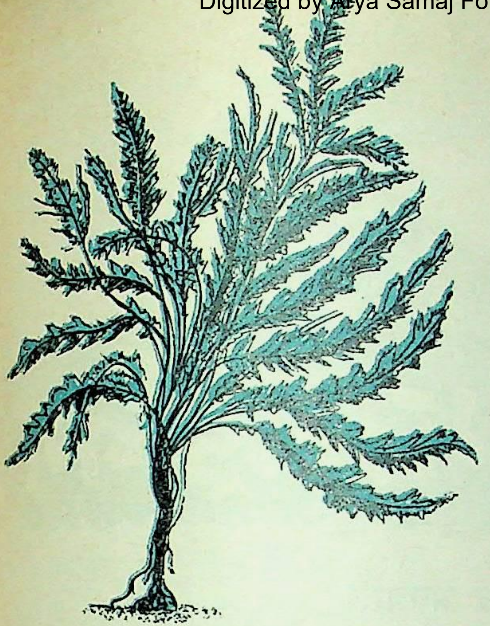

क्लोरोफाइटा जाति की समुद्री मौस (sea moss)

देने से उनका भार ४० किलोग्राम से बढ़कर ११० किलोग्राम हो गया। जो आहार इन छछूंदरों को दिया गया था, उसमें ७५% हरित एलगी प्रोटीन था। यों यह आहार उन आहारों के समान सिद्ध हुआ जिनमें शत-प्रतिशत पशु प्रोटीन अथवा ७५% सोयाबीन प्रोटीन तथा २५% पशु प्रोटीन मिला हो।

एलगी का उपयोग अफ्रीका के कतिपय ऐसे रोगियों के इलाज में सहायक सिद्ध हुआ है जो प्रोटीन के अभाव से ग्रस्त थे। इस अभाव के कारण वहाँ बच्चों की मृत्यु तक हो जाती थी।

एलगी प्रोटीन की लागत, उत्पादन-विधि के अनुसार दोगुनी, तिगुनी तक हो सकती है। फिर भी दूध, अण्डा, मांस आदि से प्राप्त प्रोटीन की तुलना में इसकी लागत अधिक न होगी। हमारे देश में इस ओर अभी ध्यान नहीं दिया गया है। ४४ करोड़ जैसी वृहत् जनसंख्या को खाद्य पूर्ति के लिए प्रोटीनयुक्त आहार की प्रथम आवश्यकता है। इस दृष्टि से हरित एलगी अत्यन्त उपयोगी आहार सिद्ध होगा। अन्तरिक्ष-यात्रियों के लिए भी एलगी को आहार के रूप में प्रस्तावित किया गया है। कम मात्रा एवं उत्कृष्ट भोज्यमान के कारण यह अधिकाधिक उपयोगी है। अन्तरिक्षयानों में इसके उत्पादन की समस्याओं के निराकरण के प्रति भी वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं। निकट भविष्य में आहार के रूप में एलगी के प्रयुक्त होने की सम्भावनाएँ उज्ज्वल हैं।

सैल्यूट का प्रारम्भ

सैन्यशिक्षण में सैल्यूट का विशेष महत्त्व है। सैल्यूट जितना चुस्त होगा उतना ही उत्तम माना जाएगा। यह प्रथा जब प्रारम्भ हुई तब इसका आशय कुछ और ही था। मध्य युगीन यूरोप में सैन्य सरदारों और नाइट्स में द्वन्द्व प्रतियोगिता बहुत प्रचलित थी और वह इतनी लोमहर्षक होती थी कि एक न एक का समाप्त हो जाना सामान्य बात थी। उस समय विजेता अपना पुरस्कार अपनी साम्राज्ञी के हाथों लेना सबसे बड़ा सम्मान समझता था। पुरस्कार लेते समय साम्राज्ञी का देदीप्यमान सौन्दर्य कहीं चकाचौंध न कर दे इस हेतु वह केवल आँखों की ओट करने के लिए अपनी हथेली आँखों के आगे कर लेता था। कालान्तर में वही प्रथा सैल्यूट में बदलते-बदलते आज के रूप में आ गयी है।

बारीक तार स्नायुओं का स्थान लेंगे

आँख, कान, चेहरे और मेरुदण्ड तक के स्नायुओं की क्षतिपूर्ति आवश्यकता पड़ने पर बारीक तारों द्वारा की जा सकेगी, ऐसी घोषणा मास्को के चिकित्सा विशेषज्ञों ने की है। प्रयोगस्वरूप एक कुत्ते में अक्रिय स्नायु को निकालकर ये नव-आविष्कृत तार बिठाये गये तो अल्प समय पश्चात् ही कुत्ता पूर्ववत् स्वस्थ हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

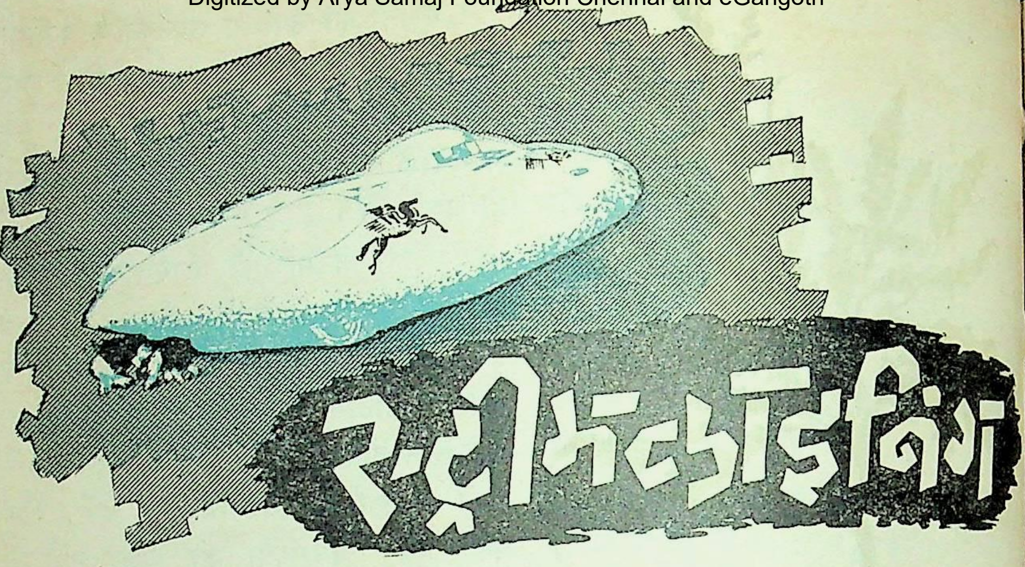

स्ट्रीमलाइनिंग

प्रकाशचन्द्र अग्रवाल

स्ट्रीमलाइनिंग तीव्र-वेग से दौड़ने वाली कारों, ट्रेनों, जलयानों तथा वायुयानों के लिए सर्वोपरि आवश्यक क्रिया है। इसका प्रारम्भ २-३ शताब्दियों पूर्व हुआ है। इस क्रिया को धारा-रेखांकन कहेंगे तो भी स्ट्रीमलाइनिंग कहने से सहज समझ में आ जाएगी। आधुनिकीकरण के अर्थ में यह शब्द इतना प्रचलित है कि जनता द्वारा अपनी सरकार का स्ट्रीमलाइनिंग और उद्योगपति द्वारा अपने कारखानों का स्ट्रीमलाइनिंग करने-कराने की बातें सुनाई पड़ती हैं। अनेक दैनिक उपयोग की वस्तुएँ भी स्ट्रीमलाइनिंग अर्थात् अधुनातन रूप में सजीव होने की विज्ञप्त की जाती हैं।

स्ट्रीमलाइनिंग भौतिक-विज्ञान की देन है। सामान्यतः हम हवा या पानी का न तो कुछ भार अनुभव करते हैं न प्रतिरोध ही, किन्तु वेग से दौड़ते या तैरते समय इनका प्रतिरोधन हमें प्रतीत होता है। वायु तथा जल की धाराओं, रेखाओं का वह प्रतिरोध ही गत्यावरोध उत्पन्न करता है। इसके अवरोध को न्यूनतम करने के लिए वाहनों, यानों आदि को चारों ओर से इस प्रकार गोल, नुकीला तथा घुमावदार बनाया जाता है कि सपाट और चौकोर सतह वाला कोई भी भाग खुला न रहे। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा।

सिद्धान्त और दृष्टान्त

खेल-कूद के अन्तर्गत भाला-फें (javeline throw) देखा ही होगा। जो खिलाड़ी लम्बे भाले को साधकर नोक की सीध में १००-१२५ फुट दूर फेंक सकता है, वही खिलाड़ी उससे आधा लम्बा भाला खड़ी दशा में २०-३० फुट भी न फेंक सकेगा। इसी प्रकार पानी के प्रवाह में एक छड़ी को लेटी अवस्था में तैराना जितना सरल है खड़ी अवस्था में उतना ही कठिन। इसका कारण यह है कि वायु अथवा पानी के प्रवाह को वस्तु की लेटी अवस्था में उतनी सतह का सामना नहीं करना पड़ता जितनी कि उसकी खड़ी अवस्था में। अतः मुकाबले प सतह जितनी अधिक होगी अर्थात् प्रवाह जितना अधिक छेड़ा जाएगा, प्रतिरोध उत ही अधिक मिलेगा। साथ ही वस्तु का वे जितना अधिक होगा, प्रतिरोध भी उत ही अधिक तीव्र होगा, अर्थात् दौड़ने वा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु को उतना ही अधिक बल लगाना पड़ेगा।

प्रकृति में स्ट्रीमलाइनिंग

इस प्रतिरोध और इससे उत्पन्न गत्यावरोधों को न्यूनतम करने के लिए स्ट्रीमलाइनिंग का प्रभाव हमने तो अभी २०-३० वर्ष पूर्व ही समझा है, किन्तु प्रकृति ने स्ट्रीमलाइनिंग अनेक वस्तुओं में बहुत पहले से दे रखा है। तीव्रगामी पक्षियों की शरीर रचना स्ट्रीमलाइनिंग की हुई होती है। पानी में तेजी से दौड़ने वाली मछलियाँ स्ट्रीमलाइनिंगयुक्त होती हैं, तथा वर्षा की बूँदें भी बादल से स्ट्रीमलाइन होकर ही गिरती हैं। यहाँ तक कि हमारे सिर के बाल तथा कानों की व्यवस्था इस प्रकार है जो दौड़ते समय वायु-प्रवाह का अवरोध न करके उसे गुजर जाने देते हैं। दौड़ने की प्रतियोगिता पैदल की हो या बाइसिकिल की, तेज दौड़ने वाला धावक सीना तानकर कभी नहीं दौड़ता, बल्कि जहाँ तक संभव होता है सिर तथा कन्धे झुकाकर ही दौड़ता है। सीना तानकर दौड़ने वाला खिलाड़ी वायु के प्रतिरोध से

(ऊपर) गोल तथा (नीचे) चौकोर वस्तु का धारा-रेखांकन भेद। प्रत्येक रेखा वह कल्पित मार्ग प्रदर्शित करती है जो जल की धाराओं को अनुसरण करना पड़ता है। स्पष्ट है कि चौकोर वस्तु का प्रतिरोधन-बल गोल की अपेक्षा कहीं अधिक होता है

बहुत जल्दी प्रभावित होकर हाँफ जाता है। चतुर धावक कभी भी आरम्भ से ही आगे निकलने की चेष्टा नहीं करता बल्कि पहले या दूसरे धावक के पीछे ही सटा हुआ रहता है। फलस्वरूप वायु का पूरा सामना आगे वाले को करना पड़ता है और पीछे वाला उतनी ही दूरी तय करने में अपेक्षाकृत बहुत कम थकता है। फलतः विजय-रेखा से कुछ ही पहले वह तीर की तरह झपटने में समर्थ होता है जबकि आगे वाला व्यक्ति परास्त हो जाता है।

स्ट्रीमलाइनिंग अत्यावश्यक

वायु प्रतिरोध की प्रबलता इससे ज्ञात हो सकती है कि यदि एक यान को १० मील प्रति घण्टे की गति से दौड़ने में १००० अश्वबल चाहिए तो उसी यान को ५० मील प्रति घण्टे दौड़ने के लिए २४०० अश्वबल आवश्यक होगा। वह अतिरिक्त बल बढ़े हुए प्रतिरोध को जीतने में लग जाएगा। इसी को एक ट्रेन के उदाहरण से भी स्पष्ट किया गया। ४० मील प्रति घंटे से चली जा रही ट्रेन की वही गति बनाये रखने के लिए इंजन को आधी ही शक्ति लगानी पड़ती थी और शेष आधी शक्ति गुरुत्वाकर्षण-बल तथा पटरियों के घर्षण-बल का सामना करने में लग जाती थी। उसी ट्रेन की गति जब ८० मील प्रति घण्टा कर दी तो देखा कि गुरुत्वाकर्षण और घर्षण-बल न जाने कहाँ शेष हो गये और इंजन को पौन से भी अधिक बल लगाना पड़ गया।

जिस प्रकार उस इंजन को अधिक बल लगाने के लिए अधिक ईंधन खपाना आवश्यक हो गया वैसे ही मोटरकारों में भी पेट्रोल की खपत अत्यधिक बढ़ जाती है। इस दृष्टि से स्ट्रीमलाइनिंग और भी आवश्यक है।

स्ट्रीमलाइन कारें

प्रारम्भिक कारों में सन् १९१० के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

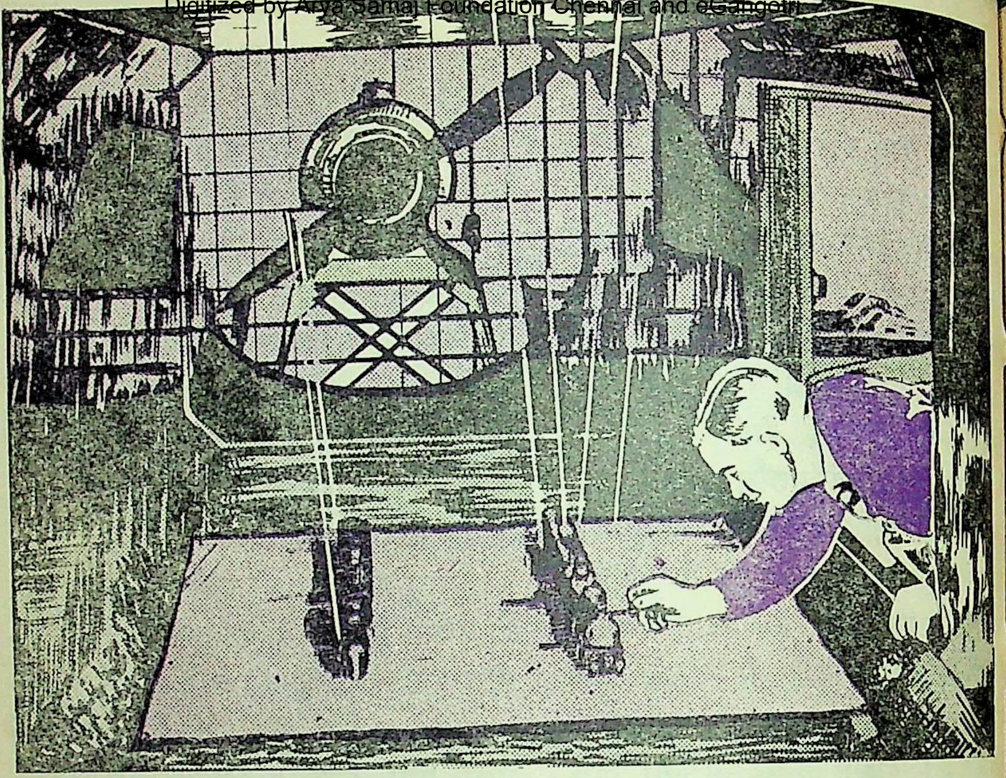

ट्रेनों (माडल-ट्रेन) के स्ट्रीमलाइनिंग का परीक्षण ऐसी विशिष्ट वायु-सुरंग की सहायता से किया जाता है

माडल की कार और आज की नयी कार को देखें तो स्ट्रीमलाइनिंग सहज समझ में आ जाएगा। पुरानी कारों के अग्रभाग में रेडियेटर, बॉनेट, विन्डस्क्रीन आदि चौकोर और खड़ी अवस्था में होते थे। दोनों ओर मडगार्ड से सटाकर अतिरिक्त पहिये लगे रहते थे। वह सब कुछ नयी कार में बदला हुआ रहता है। आगे का प्रत्येक भाग यथासंभव एक मछली की तरह ढलानयुक्त रखा जाता है तथा अतिरिक्त पहिये सामने से हटाकर पीछे कैरियर की ओर रखे जाते हैं।

प्रारम्भ में स्ट्रीमलाइनिंग से यही समझा जाता था कि मोटरकारों का केवल सामने का ही भाग स्ट्रीमलाइन कर देना पर्याप्त है। जल्द ही प्रयोगों द्वारा यह भी समझ में आया कि केवल अग्र भाग को स्ट्रीमलाइन करके वायु काटने से काम पूरा नहीं होगा। वस्तुतः कार के पिछले भाग भी वायु-प्रतिरोधन में बड़ा हाथ बँटाते हैं। अतः न केवल पिछले भागों को भी ढलानयुक्त तथा स्ट्रीमलाइन बनाया जाने लगा, बल्कि कार को चारों ओर से यथासंभव इस प्रकार ढका हुआ बनाया जाने लगा कि हवा को टकराने भरने तथा प्रतिरोध बढ़ाने का अवकाश ही न मिले। यहाँ तक कि पहियों की तानें भी वायुरोधक मानी जाती हैं। संसारप्रसिद्ध मोटर-स्पीड चैम्पियन सर मालकम केम्बेल तथा ज्हॉन कॉब की रेसिंग कारें वृहत् अण्डे के समान हैं जो ४०० मील प्रति घण्टे तक के वेग से दौड़ी चली जाती हैं। उस अण्डाकार सतह पर वायु को अवसर ही नहीं मिलता कि कहीं भी अपना प्रतिरोध बल लगाये।

स्ट्रीमलाइन ट्रेन

आधुनिक ट्रेन भी यथासंभव अधिकाधिक स्ट्रीमलाइन बनायी जा रही है। स्टीम इंजन के स्थान पर अब जो डीजल इंजन बन [illegible] हैं वे दूर से बड़ी ह्वेल जैसे दिखते हैं। इंजन की का कोई भी पुर्जा, ऊँचा उठा हुआ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाता। जर्मनी की फ्लाइंग हेम्बर्गर स्ट्रीमलाइन ट्रेन का अत्युत्तम उदाहरण है। कहते हैं कि ८० मील की गति से धड़धड़ाती हुई इस ट्रेन के आगे रूमाल खोलकर खड़े रहिये, रूमाल फरफराएगा भी नहीं। इसकी तुलना उस साधारण ट्रेन से की जा सकती है जो धुआँधार दौड़ती हुई, इर्द-गिर्द की वस्तुएँ उड़ाती चलती है।

स्ट्रीमलाइन जलयान तथा वायुयान

बड़े-बड़े स्टीमर बनाने में भी स्ट्रीम-लाइनिंग की दृष्टि से परिवर्तन होते आये हैं। न केवल पानी कटता रहे बल्कि स्टीमर के अन्य भागों से भी उसकी टकराहट तीव्र न हो, इस हेतु उनका अग्र भाग नुकीला, त्रिकोणाकार का होने के साथ ही पानी को स्पर्श करता हुआ भाग गोलाकार और उभरा हुआ रखा जाता है।

इसी प्रकार वायुयानों में भी आवश्यक परिवर्तन किये जा रहे हैं। आधुनिक जेट विमान तो एक पतली रेखा जैसा ही दिखता है। पिछले पुराने यानों जैसे अग्र भाग में बड़े पंखे और दोनों ओर बड़े-बड़े ढाँचे जैसा कुछ नहीं होता। अन्तरिक्षयान, लम्बी पतली रेखा जैसे दिखते हैं, मानो धनुष से छूटा हुआ तीर आकाश को वेधने उड़ चला हो। अनेक आधुनिक वायुयान दूर से ऐसे लगते हैं मानो गगनगामी गरुड़ उड़े चले आ रहे हैं।

एक दृष्टि से स्ट्रीमलाइनिंग ४० मील की गति से कम चलने वाले वाहनों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होता। मान लीजिए आपकी कार को लगभग ३० मील की रफ्तार की वायु सामने ही मिले तब तो ४० मील की रफ्तार बनाये रखने में आपको ७० मील की रफ्तार जितना बल लगाना पड़ेगा। इसका अर्थ होगा अधिक ईंधन का खर्च। अतः व्यवसाय की दृष्टि से गतिशील वाहनों के लिए स्ट्रीमलाइनिंग अनिवार्य है।

माताटीला बाँध

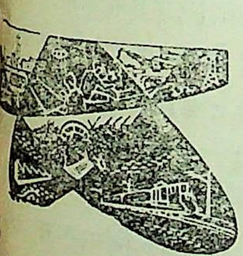

इस बांध में सिंचाई हेतु लगभग चार अरब घनफुट पानी संचय किया जा सकता है। इसके निर्माण से इस क्षेत्र में नहरों का जाल बिछता जा रहा है। इससे झांसी, जालौन और हमीरपुर जिलों की ढाई लाख एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएं मिली हैं।

इस बांध से २० हज़ार किलोवाट पनबिजली भी तैयार होगी। इस बिजली से कानपुर की संख्या के लगभग एक तिहाई कारखाने चलाये जा सकते हैं।

इससे आसपास के क्षेत्रों में लघु उद्योगों का विकास होगा। लोगों को नया रोजगार मिलेगा और खुशहाली बढ़ेगी।

यह बांध २०,९५० फुट लम्बा है और अपनी नींव से १५० फुट ऊंचा है। इसके निर्माण में १२ करोड़ रुपये लगे हैं।

देश में ऐसे अनेक बांध बन रहे हैं राष्ट्रीय बचत योजनाओं में धन जमा कर आप निर्माण के साझीदार बनें!

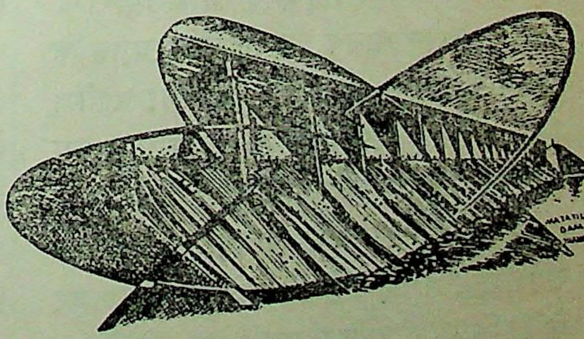

उत्पादन बढ़ाइए और बचाइए • बचत का धन निर्माण में लगाइए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

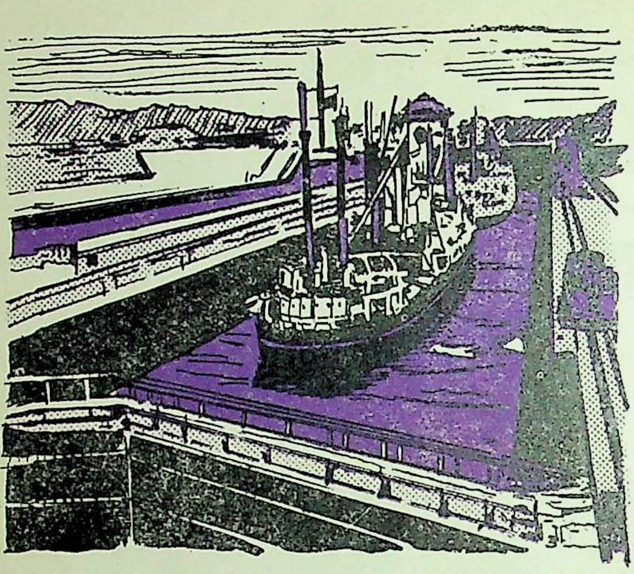

पनामा नहर

जुगलकिशोर वार्ष्णेय

१९वीं शताब्दी तक उत्तरी अमरीका और दक्षिणी अमरीका के महाद्वीप एक सँकरे भू-भाग से जुड़े हुए थे। इस कारण अतलांतिक महासागर से प्रशांत महासागर जाने वाले जहाजों को दक्षिणी अमरीका का पूरा चक्कर लगाना पड़ता था और १०,५०० मील की व्यर्थ यात्रा करनी पड़ती थी।

इन दोनों महासागरों को पनामा इस्थमस काटकर मिलाने का विचार सर्वप्रथम कोलम्बस को सूझा। सन् १५१३ में एक और व्यक्ति वास्को नूनेज बालबोआ ने अपने मित्र पिजारो के साथ पनामा इस्थमस की यात्रा की परन्तु वह कुलेब्रा पहाड़ पर आकर अटक गया। १५२९ में अलवारों द सावेद्रा सेरोन नामक व्यक्ति ने इस्थमस के आरपार नहर बनाने की योजना रखी। इसके पश्चात् लगभग २०० वर्ष तक इस विषय में कोई प्रगति नहीं हुई। १८२५ से १८४६ तक फ्रान्स ने पनामा इस्थमस के सर्वेक्षण के लिए कई दल भेजे जिन्होंने नहर के विभिन्न संभावित मार्गों का निरीक्षण किया।

नवम्बर १८६९ में एक फ्रांसीसी, फर्डीनेंड द लैसप्स ने स्वेज नहर बनाकर संसार को आश्चर्यचकित कर दिया था। अपनी इस सफलता से उत्साहित होकर लैसप्स ने १८७५ में पेरिस की ज्यो-ग्राफिकल सोसाइटी के सामने पनामा इस्थमस काटकर समुद्र तल पर एक नहर बनाने की योजना रखी। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए एक कमेटी बनायी गयी। इस कमेटी के मुख्य इंजीनियर वाइस ने २० मार्च, १८७८ को कोलम्बिया सरकार से नहर बनाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। वाइस ने पनामा इस्थमस का भी विस्तृत अध्ययन किया। उसके विचार से नहर समुद्रतल पर न बनाकर ऊँचे तल पर बनाना अधिक सुविधाजनक था। यही सुझाव एक और फ्रांसीसी इंजीनियर द लैपिने ने दिया था। उसने सुझाव दिया कि चैगर्स और ग्रा नदियों पर बाँध बनाकर कृत्रिम झीलें बनानी चाहिए। इन झीलों को नहर द्वारा मिलाने के लिए कुलेब्रा पहाड़ में बहुत कम खुदाई करनी पड़ेगी। समुद्र से जहाजों को झील में लाने के लिए दोनों ओर जलपाश (locks) की व्यवस्था रहेगी। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुझावों पर लैसप्स ने कोई ध्यान नहीं दिया। १८७९ में लैसप्स ने पनामा कैनाल कम्पनी की स्थापना की। इस समय उसकी आयु ७४ वर्ष की थी, फिर भी उसमें युवकों जैसा उत्साह और स्फूर्ति थी।

इस कम्पनी ने पनामा इस्थमस में नहर की खुदाई का काम शुरू किया परन्तु वहाँ की जलवायु बड़ी ही खराब थी। सैकड़ों व्यक्ति पीतज्वर तथा मलेरिया के शिकार हो गये। चैगर्स नदी में भयंकर बाढ़ें आयीं और कुलेब्रा पहाड़ की खुदाई में भूमि-फिसलन के कारण बड़ी हानि हुई। इधर फ्रान्स में कम्पनी के विरुद्ध भ्रष्टाचार के बड़े गम्भीर आरोप लगाये जा रहे थे और कम्पनी की आर्थिक स्थिति बड़ी डाँवाडोल थी। १८८७ में कम्पनी के इंजीनियरों ने लैसप्स को बताया कि समुद्र तल पर नहर बनाना बिलकुल असम्भव होगा और लैपिने के सुझाव के अनुसार जलपाश वाली नहर ही उपयुक्त रहेगी। परन्तु कम्पनी की आर्थिक स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि १८८९ में काम बन्द कर देना पड़ा। १८९४ में लैसप्स की मृत्यु हो गयी।

पनामा नहर की महत्त्वपूर्ण अवस्थिति

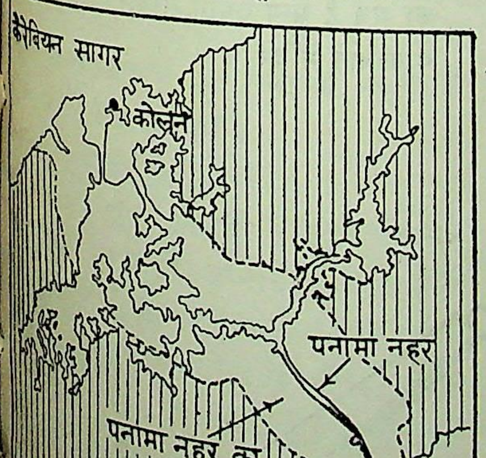

१८९९ में संयुक्त राष्ट्र अमरीका ने ४ करोड़ डालर में पनामा केनाल कम्पनी को खरीद लिया। २२ जनवरी, १९०३ को अमरीका के विदेश मन्त्री जॉन हे ने कोलम्बिया के प्रतिनिधि से हे-हरन संधि पर हस्ताक्षर कराये, परन्तु कोलम्बिया की संसद ने यह संधि अस्वीकार कर दी। ३ नवम्बर, १९०३ को अमरीका की सहायता से पनामा में क्रांति हो गयी और पनामा ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। क्रांति के नेता बूनो बरीला ने एक संधि के अनुसार पनामा नहर का क्षेत्र अमरीका को दे दिया। बूनो बरीला पनामा नहर का बड़ा भारी समर्थक था और पनामा केनाल कम्पनी के साथ कुछ दिनों तक पनामा नहर का मुख्य इंजीनियर भी रह चुका था।

अमरीका ने नहर के काम के लिए जॉन वालेस को मुख्य इंजीनियर नियुक्त किया। वालेस ने पनामा नहर क्षेत्र की सफाई की ओर अधिक ध्यान दिया और मजदूरों के लिए मकान बनवाये। कुछ समय पश्चात् स्टीवेंस पनामा नहर का मुख्य इंजीनियर नियुक्त हुआ। स्टीवेंस में कार्य करने तथा संगठन की अपूर्व क्षमता थी। उसने नहर की खुदाई का काम बड़ी तेजी से आगे बढ़ाया। इस काम के दौरान स्टीवेंस का यह दृढ़ विश्वास हो गया कि केवल जलपाश युक्त नहर की योजना ही सफल हो सकती है। उसने बड़ी चतुरता से विदेश मंत्री टाफ्ट तथा अन्य सीनेटरों का समर्थन प्राप्त कर सीनेट से अपनी योजना की मंजूरी ले ली।

सन् १९०६ में अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने पनामा नहर क्षेत्र का निरीक्षण किया। राष्ट्रपति ने स्टीवेंस के काम की बड़ी सराहना की। कुछ दिनों पश्चात् ठेके देने के बारे में कुछ मतभेद होने के कारण स्टीवेंस ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

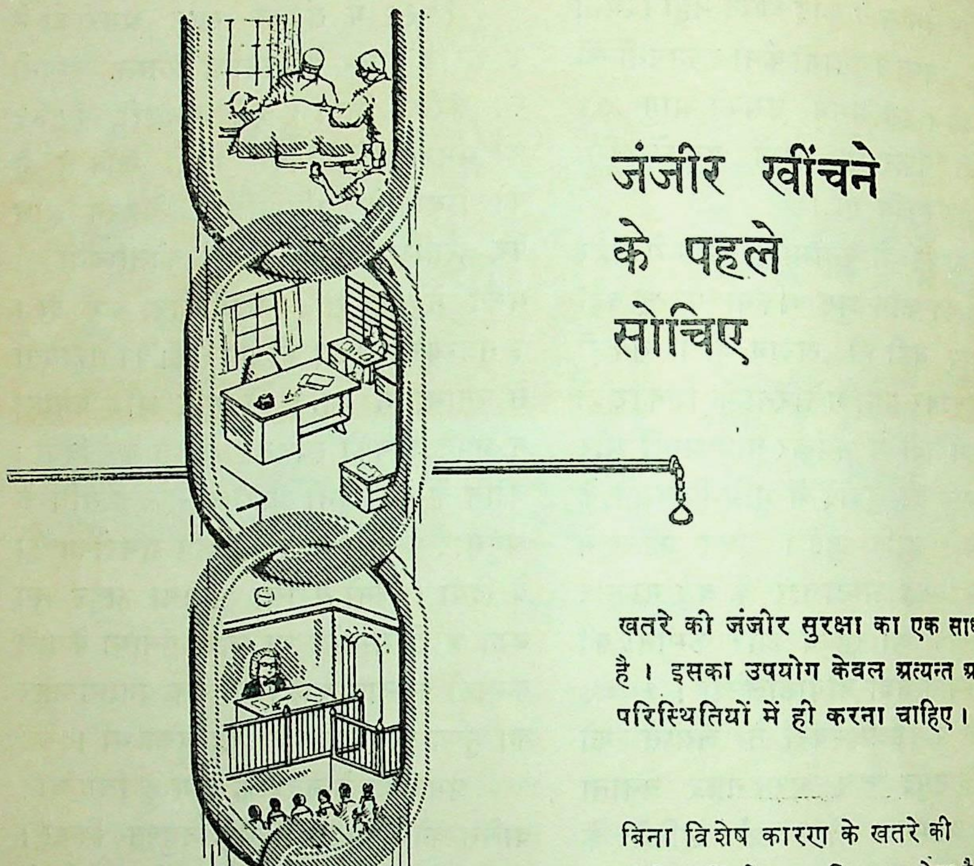

जंजीर खींचने के पहले सोचिए

खतरे की जंजीर सुरक्षा का एक साधन है। इसका उपयोग केवल अत्यन्त आवश्यक परिस्थितियों में ही करना चाहिए।

बिना विशेष कारण के खतरे की जंजीर खींचने का परिणाम होता है, किसी रोगी को निराशा, राष्ट्रीय योजनाओं की पूर्ति में विलम्ब, कर्मचारियों के काम पर पहुँचने में रुकावट और उन अनेक सह-यात्रियों को परेशानी जिनमें बूढ़े और बीमार भी हैं। और एक ट्रेन को बिना कारण रोकने का अर्थ है अन्य तमाम सम्बन्धित ट्रेनों के आने-जाने में देरी।

—उत्तर रेल्वे द्वारा प्रचारित

NPS/NR/101

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

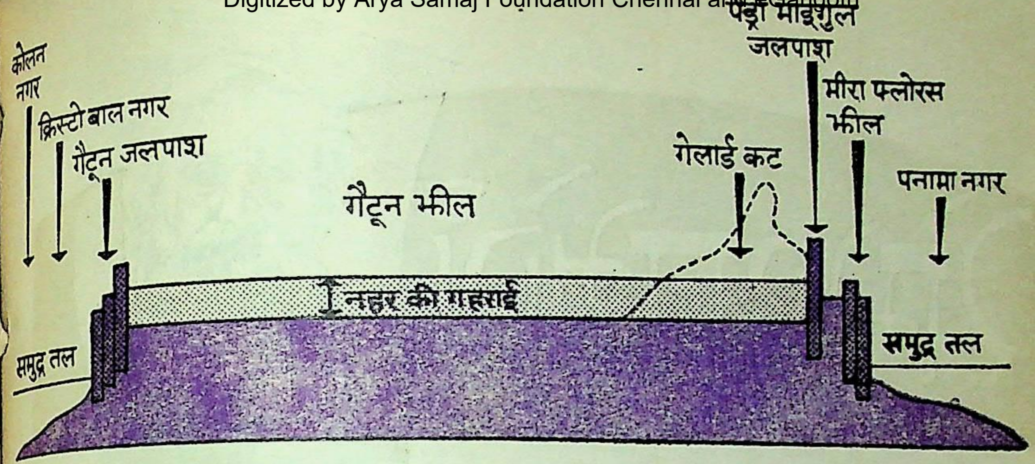

पनामा नहर

स्टीवेंस के त्यागपत्र देने के बाद १९०७ में अमरीकी सेना के जार्ज वाशिंगटन गोइथाल्स को पनामा नहर का मुख्य इंजीनियर नियुक्त किया गया। गोइथाल्स ने बड़ी लगन और दूरदर्शिता से स्टीवेंस के काम को आगे बढ़ाया। १९०९ में कुलेब्रा पहाड़ को काफी काट लिया गया था। २० मई, १९१३ को कुलेब्रा पहाड़ में नहर की खुदाई पूरी हो गयी। इस कटाई में कर्नल गेलार्ड ने बड़ा महत्त्वपूर्ण काम किया था। उन्हीं के नाम पर कुलेब्रा कट का नाम गेलार्ड कट रख दिया गया था। १५ अगस्त, १९१४ को पनामा नहर संसार के व्यापारिक जहाजों के लिए विधिवत खोल दी गयी। सबसे पहला जहाज जो पनामा नहर से निकला वह आनकन था।

पनामा नहर का विवरण

समुद्र के एक किनारे से दूसरे किनारे तक पनामा नहर की लम्बाई ४०·२७ मील और गहरे पानी से गहरे पानी तक ५०·७२ मील है। एक साधारण जहाज को नहर पार करने में लगभग ८ घंटे लगते हैं। अतलांतिक महासागर से प्रशांत महासागर में जाने के लिए जहाज पहले लीमन की खाड़ी में होकर गैटून जलपाश तक ६¾ मील का मार्ग तय करता है। गैटून पर जहाज तीन जलपाशों में होकर गुजरता है जो इसे ८५ फुट ऊँचा उठा देते हैं। इसके बाद जहाज गैटून झील में २४ मील का मार्ग तय करता है। इसके बाद जहाज ८ मील लम्बे गेलार्ड कट में होकर पेड्रो माइगुल जलपाश पहुँचता है। गेलार्ड कट में नहर की चौड़ाई ३०० फुट और गहराई ४५ फुट है। पेड्रो माइगुल जलपाश जहाज को ३१ फुट नीचे उतारता है। इसके बाद जहाज मीराफ्लोरस जलपाशों के द्वारा समुद्र तल तक उतार दिया जाता है और ८ मील का मार्ग तय करके प्रशान्त महासागर में पहुँच जाता है।

जलपाश

पनामा नहर में १२ जलपाश हैं जो १००० फुट लम्बे और ११० फुट चौड़े हैं। ये जलपाश सीमेंट कंक्रीट के बने हैं। जलपाश द्वार दो किवाड़ों से बन्द होते हैं। प्रत्येक किवाड़ ६६ फुट चौड़े, ४७ फुट से ८२ फुट तक ऊँचे और ७ फुट मोटे हैं। इनका भार २९० से ७३० टन तक है। जलपाशों में जहाज अपनी शक्ति से नहीं चलते बल्कि बिजली के इंजनों द्वारा खींचे जाते हैं।

नहर के बनाने में लगभग ३७ करोड़ डालर व्यय हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेम्युअल मोर्स

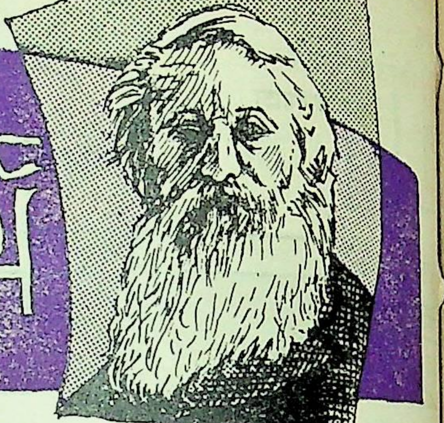

रामसिंह

'तीन हजार मील की दूरी से यह पत्र लिख रहा हूँ; काश, यह तुम्हें अभी ही मिल जाता !'

जहाज के केबिन में बैठे-बैठे प्रसिद्ध अमरीकी चित्रकार, प्रोफेसर सेम्युअल फिनले ब्रीज मोर्स ने जब यह पंक्ति लिखी, तब उसकी कल्पना में भी न होगा कि तीन वर्ष के अन्दर ही इस अनोखी आकांक्षापूर्ति की दिशा में उसका जीवन एक नया मोड़ ले लेगा। उसे इसकी भी कल्पना न होगी कि 'मेरी गणना १५वीं शताब्दी के प्रसिद्ध चित्रकारों रफेल, माइकेल एन्जेलो तथा टिशेन आदि में होगी' कहने वाले मोर्स को संसार एक चित्रकार नहीं, महान् आविष्कर्ता के रूप में याद करेगा। इस दिशा में उसने और भी तेजी से कार्य करना तब प्रारम्भ कर दिया जब उसने देखा कि उसकी परम स्नेहमयी पत्नी लुक्रेशिया का मृत्यु-संवाद केवल ४०० मील की दूरी से छः दिनों में उस तक पहुँच पाया था !

जीवन का प्रथम अध्याय

इंग्लैण्ड छोड़कर अमरीका में बसे हुए मोर्स-परिवार में २७ अप्रैल, १७९१ को चार्ल्सटाउन में सेम्युअल का जन्म हुआ। १९ वर्ष की आयु में येल कालेज से विद्युत् विज्ञान में विशेष योग्यता सहित स्नातक होते-होते वहाँ के प्रसिद्ध चित्रकार, वाशिंगटन आलस्टन के सम्पर्क से मोर्स में चित्रकला के प्रति प्रबल उत्कण्ठा जाग उठी और चित्रकला ने मोर्स को एवं मोर्स ने चित्रकला को अपना बना लिया।

मोर्स की चित्रकला की छः वर्ष धूम रही। १८२५ में स्थापित नेशनल एकेडमी आफ डिजाइन्स के संस्थापकों में मोर्स भी थे। कला और प्रसिद्धि होते हुए मोर्स का जीवन बड़ा संघर्षमय रहा। प्रति चित्र केवल १५ डालर लेते हुए मोर्स ने शहर-शहर का प्रवास किया। वह खर्चे में कमी करके अपनी कला के विकास के लिए यूरोपीय यात्रा के लिए धन जुटाने लगा। उसी बीच, एक सम्पन्न परिवार की सुन्दर कन्या, लुक्रेशिया वाकर से उसकी भेंट हुई। वह भेंट, वह परिचय, परिणय में परिणत होना मोर्स के लिए सौभाग्यपूर्ण रहा, क्योंकि मोर्स को अभावों से मुक्ति मिल गयी। अब सम्मान और सम्पत्ति उसे मुक्त रूप से मिलते रहे।

परन्तु मोर्स का सुख-सम्पन्न जीवन सात वर्ष से अधिक न रह सका। विवाह के सातवें वर्ष, लुक्रेशिया की आकस्मिक मृत्यु ने मोर्स को हिला दिया। जीवन के उस बहुत बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभाव को स्वयं कला में डूब रहकर भुलाने के लिए अपने तीनों बच्चों को रिश्तेदारों के संरक्षण में सौंपकर मोर्स ने यूरोप की लम्बी यात्रा पर पग बढ़ा दिया।

परिवर्तित जीवनधारा

१८३२, अक्टूबर की पहली तारीख को सले (Sully) जहाज अमरीका के लिए चार सप्ताह की यात्रा पर कुछ ही घण्टे पूर्व इंगलैण्ड से प्रस्थान कर चुका था। जहाज के यात्रियों को वह महीना भर काटना निश्चय ही दूभर हो जाता, जिसमें उन्हें ऊपर नीला आकाश और नीचे नीला अतलांतिक महासागर के अतिरिक्त तीसरा कुछ भी देखने को न मिलता। किन्तु संयोग इतना निष्ठुर नहीं था। जहाज में दो व्यक्ति अवश्य ऐसे थे जो यात्रियों का आकर्षण-केन्द्र थे। एक था, जादूगर डा. जैक्सन और दूसरा चित्रकार प्रो. मोर्स।

डा. जैक्सन ने अपने विभिन्न मनोरंजक प्रयोगों के अन्तर्गत एक घोड़ानाल-चुम्बक द्वारा लोहे की पिनें आदि आकर्षित होने के करिश्मे पहली बार दिखाकर दर्शकों को सम्मोहित कर दिया था। मोर्स अकेला ऐसा था जिसे वह वस्तु रोचक कम, उपयोगी अधिक प्रतीत हुई। वह नित्य ही उन प्रयोगों को बारीकी से देखता। चुम्बक का अध्ययन विद्यार्थी-जीवन से ही मोर्स का प्रिय विषय था। उस समय उसने ऐसे अनेक छोटे-मोटे उपकरण बनाये भी थे।

वहीं से मोर्स की जीवनधारा ने अनपेक्षित मोड़ ले लिया। चित्रकार मोर्स रुकता गया और वैज्ञानिक मोर्स आगे उभरता आया। जैक्सन के घोड़ानाल-चुम्बक को देखकर मोर्स ने सोचा—'यदि विद्युतीय चुम्बक को एक सर्किट में बन्द करके विद्युत की उपस्थिति प्रत्यक्ष प्रदर्शित की जा सकती है, तो यह भी संभव क्यों न हो कि विद्युत द्वारा संदेश-वहन भी किया जा सके?'

और, उसी शाम से मोर्स अपने कार्य में लग गया। जहाज के अपने केबिन से केवल खाने के समय ही निकलता और शेष समय, केबिन में बन्द ही बन्द, अपने प्रयोगों में जुटा रहता। उसने कल्पना के नेत्रों से देखा कि संसार उसी की ओर आशाभरी दृष्टि लगाये हुए है कि कब विद्युत द्वारा संदेश-वहन सम्भव हो। तब तक वाष्प-चालित वाहनों का प्रादुर्भाव हो चुका था। कारखाने और मशीनें हस्तोद्योग के कारीगरों और दस्तकारों को घर बिठा चुकी थीं और विज्ञान ने नयी जागृति ला दी थी। कमी थी तो केवल त्वरित संदेश-वहन के साधनों की।

मोर्स अपने यूरोपीय प्रवास के अन्तर्गत देख आया था कि इंग्लैण्ड, फ्रान्स और जर्मनी में आप्टीकल टेलीग्राफी जैसे कुछेक प्रारम्भिक और सीधे-सादे यंत्रों पर त्वरित संदेश-वहन के प्रयोग किये जा रहे थे, किन्तु उनमें आवश्यक क्षमता का अभाव होने से मोर्स उनसे सन्तुष्ट नहीं था। जहाज अपनी यात्रा के अन्तिम दौर पर था लेकिन मोर्स अपने केबिन से बाहर आना ही नहीं चाहता था। किनारा आने से कुछ ही घंटे पूर्व कप्तान इसके पास आया और बोला—

"प्रोफेसर, अब तो शायद तुम बता सकोगे कि इतने दिनों बन्द केबिन में तुम क्या करते रहे?"

"कैप्टन, अगर जल्द ही किसी दिन तुम सुनो कि संसार में विद्युतीय टेलीग्राफी का आश्चर्यजनक आविष्कार हो गया है, तो तुम यह याद करके खुश हो लेना कि वह महान् आविष्कारक तुम्हारे सले (Sully) जहाज के बन्द केबिन में ही जन्मा था।"

कठिन कसौटी, विकट धनाभाव

यूरोप की लम्बी यात्रा से लौटने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

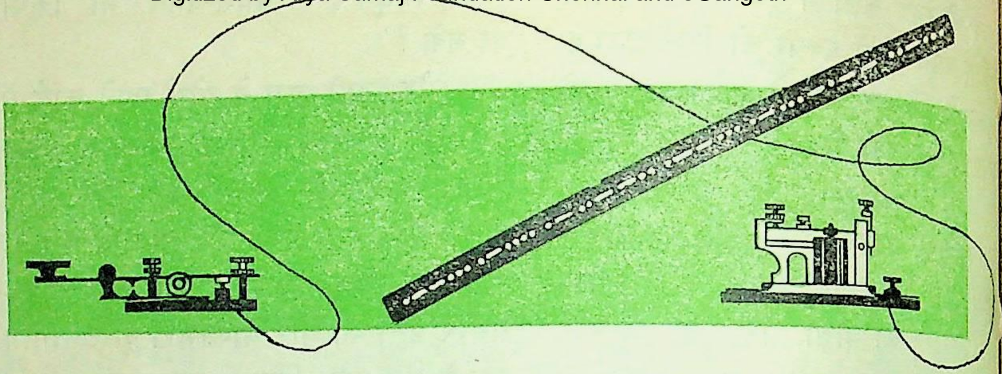

मोर्स टेलीग्राफी का वर्तमान यंत्र

मोर्स को धनाभाव का सामना करना पड़ा। अपने आविष्कार की धुन में नये चित्र बनाने के प्रति उसे न रुचि रही, न अवकाश। आखिर, पेट भरने के लिए चित्रकारी के कुछ ट्यूशन लगा लिये। ट्यूशन के भी पैसे कभी-कभी समय पर न मिल पाते तो विकट संकट खड़ा हो जाता। प्रायः ही मोर्स अपने किसी शिष्य से कहता सुनाई पड़ता :

"पैसा कल तो मिल जाएगा न ?"

"अगले हफ्ते तक जरूर ला दूँगा।"

"अगले हफ्ते ? अगर जिन्दा रह सका……"

बात यहाँ तक आ पहुँची थी !

अन्ततः दुःख के बादल छँटे। मित्रों के सामूहिक प्रयास से मोर्स को सिटी यूनिवर्सिटी में ड्राइंग के प्रोफेसर की जगह मिल गयी। वेतन कुछ कम था, परन्तु अपने आविष्कार से सम्बन्धित उपकरण जुटाना तथा माडल बनाना उसके लिए सुविधापूर्ण हो गया।

सफलता और प्रसिद्धि

यद्यपि मोर्स का माडल १८३६ में ही बन चुका था, किन्तु उसके सफल प्रदर्शन की तिथि अभी दूर थी। ६-७ वर्ष बीत गये। अपना आविष्कार पेटेण्ट कराने तथा प्रदर्शन करने के लिए अमरीकी कांग्रेस से धन की सहायता स्वीकृत कराने में मोर्स को काफी प्रयत्न करना पड़ा। प्रदर्शन के लिए वाशिंगटन से बाल्टीमोर तक टेलीग्राफ लाइन डालने की योजना में ३० हजार डालर की आवश्यकता थी। इसके लिए कांग्रेस के आगामी अधिवेशन तक ठहरना अनिवार्य था।

कांग्रेस के अधिवेशन के अंतिम दिन, मोर्स-सहायता-बिल ८३ विरुद्ध ८६ के बहुमत से पास किया गया और अनुदान स्वीकृत हो गया। योजना के अनुसार वाशिंगटन और बाल्टीमोर के मध्य टेलीग्राफ लाइन डाली गयी। पहला प्रयोग भूमिगत तार डालने का असफल रहा, क्योंकि धरती में तार जल्द ही गल गये। तत्पश्चात् खंभों ही खंभों पर, आठ हफ्तों में वह लाइन खींची गयी। प्रदर्शन की सफलता तब अभूतपूर्व रही जब प्रथम टेलीग्राफ-संदेश बाइबिल की इस महान् उक्ति द्वारा प्रसारित किया गया—'ईश्वर का कैसा चमत्कार !'

मोर्स के माडल की सफलता के पीछे आल्फ्रेड नामक उसके मित्र का बहुत बड़ा हाथ था। वह अपना सब कुछ भुलाकर, हाथ धोकर इसी जिद पर अड़ गया था कि मोर्स के माडल को सफल बनाना ही है। उसके सहयोग से मोर्स ने बिन्दु और रेखा (dots and dashes) प्रणाली का अपना संदेशवाहक यंत्र तैयार कर लिया।

संसार को ऐसा चमत्कार देकर एक समय का चित्रकार प्रो. मोर्स और बाद में संसार-प्रसिद्ध आविष्कारक सेम्युअल मोर्स न्यूयार्क में २ अप्रैल, १८७२ को चिर-निद्रा में लीन हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

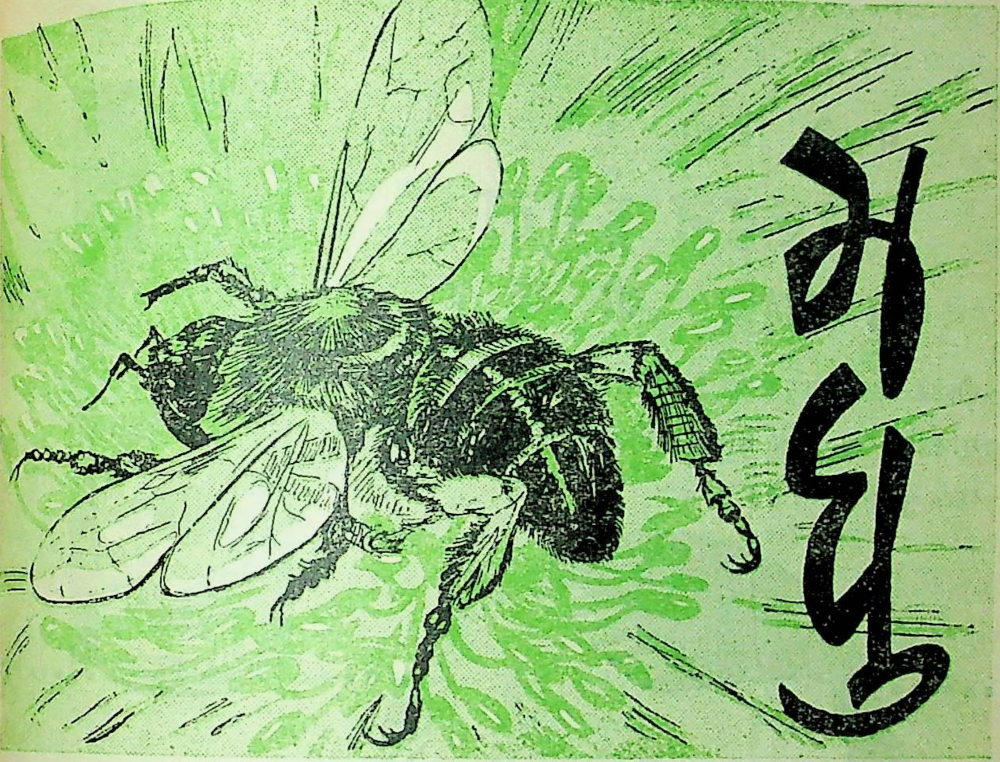

जगदीशचन्द्र श्रीवास्तव

मधु याने शहद की मिठास स्वयं एक उपमा है। उत्तम प्रकार का मधु एपिस मेलिफिका (*Apis mellifica*) नामक मधुमक्खियों से प्राप्त होता है। मक्खियाँ यह मधु विभिन्न पुष्पों से एकत्र करती हैं। वे अपने पेट में मधु-संचय करती रहती हैं। पेट में मधु अनेक जटिल प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ सुक्रोज (sucrose), डेक्स्ट्रोज (dextrose) तथा लेव्यूलोज (laevulose) आदि में परिवर्तित होता रहता है।

मक्खियों से मोम भी प्राप्त होता है। उनके गोलाकार पेट के निचले भाग में पतली परतों के रूप में मोम जमा रहता है। उसमें परागकणों की अनेक अशुद्धियाँ भरी रहती हैं जिन्हें रासायनिक विधियों द्वारा दूर किया जाता है।

एपिस मेलिफिका मधुमक्खी दक्षिण भारत में भी पायी जाती है। यह अपना छत्ता पेड़ों की टहनियों, चट्टानों की दरारों तथा खण्डहरों की दीवारों पर लगाती है। इनकी चार जातियाँ और होती हैं। एपिस इण्डिका (*Apis indica*) तथा एपिस फ्लोरेलिस (*Apis floralis*) मक्खियाँ तो अपने स्थान बदलती रहती हैं किन्तु एपिसनाइग्रोसिंक्टा (*Apis nigrocincta*) मक्खी वर्ष भर एक ही स्थान पर रहती है। इन्हीं में छोटी जाति की मक्खी (जो मैदानों तथा पहाड़ों पर पायी जाती है) का मधु घटिया किस्म का होता है। एपिस डोरसेटा (*Apis dorsata*) मक्खी दूनी बड़ी होती है।

मधु का संग्रह तथा विक्रय

मधु-संग्राहक लोग परिचित स्थानों से मधु एकत्र करते रहते हैं। यही उनकी मुख्य आजीविका है। दक्षिण भारत में पंचमलाई तथा कोरल्योर के पर्वतीय क्षेत्रों में विशेष रूप से मधु का संचय किया जाता है। कोयम्बटूर के जंगलों में तीन प्रकार का मधु प्राप्त होता है। उनमें से एक प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

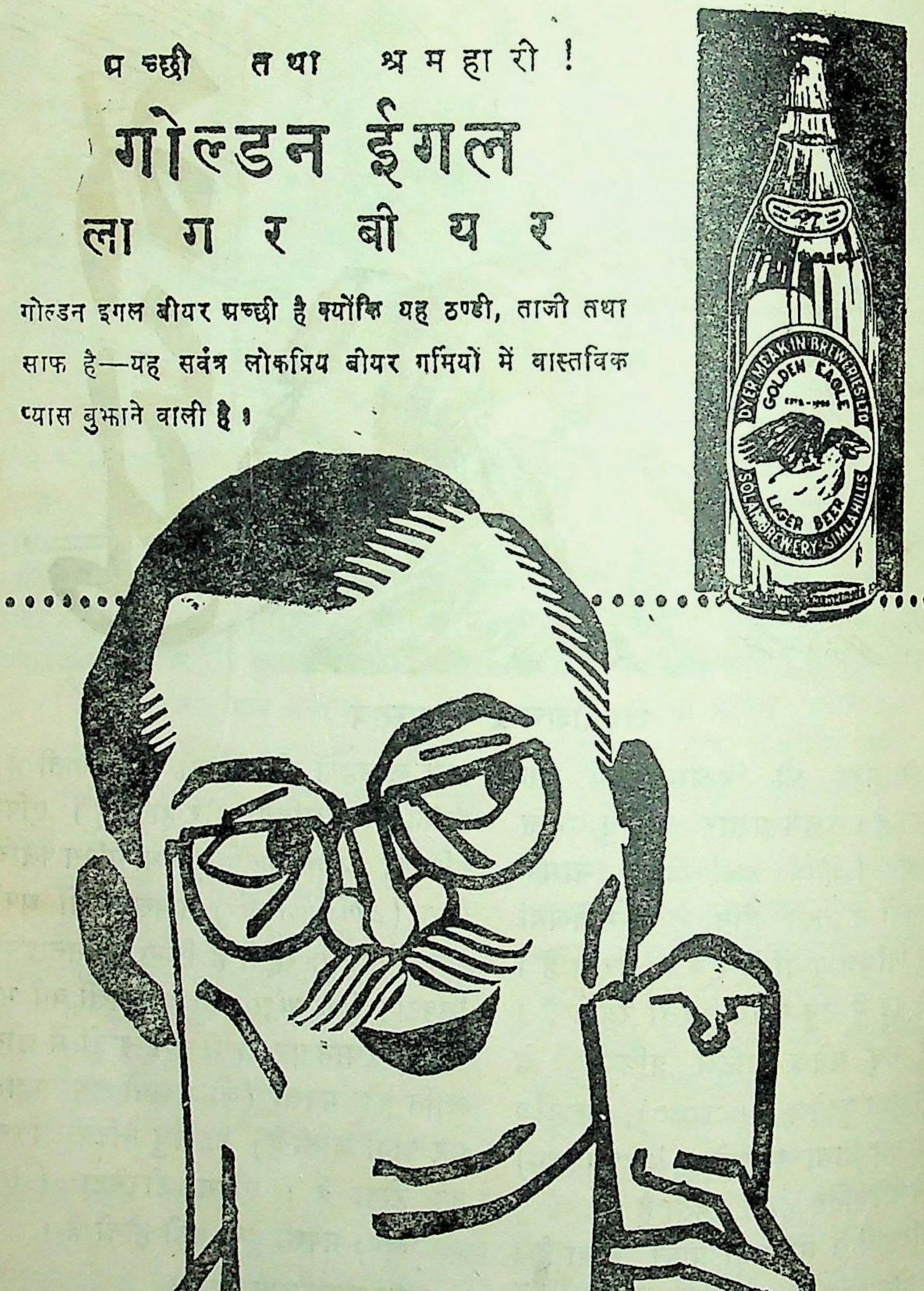

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मधु औषधीय उपयोगों में लिया जाता है।

मध्य प्रदेश में पाँच प्रकार का मधु पाया जाता है—कुराटेने, मूसरटेने, तोन्यूदीटेने, पिटवरटेने तथा बुनागोलटेने। इनमें प्रथम और अन्तिम जाति उत्तम मानी जाती है। वहाँ धानुक तथा नहाल जाति के लोग मधु और मोम का संचय बड़े पैमाने पर करते हैं।

मधु कई प्रकार से बिकता है। कुछ लोग छत्ते से निचोड़कर, तो कुछ लोग मधु समेत ही छत्ते के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर बेचते हैं। अब तो यह कार्य भी यन्त्रों द्वारा होने लग गया है। हनी एक्सट्रैक्टर (honey extractor) नामक यन्त्र से मधु निकाला जाता है।

कुछ समय पहले यूरोप तथा अमरीका में कोम्ब-हनी (comb honey) के नाम से कृत्रिम छत्तों में मधु भर कर बिकता था। वे लोग ढाँचों की मदद से कृत्रिम छत्ते बना लेते थे और उनमें मधुमक्खियाँ पाल लेते थे। मधु को द्रव के अतिरिक्त दानेदार भी बनाकर बेचा जाता था। दानेदार बनाने में मधु के डेक्स्ट्रोज-अणु केलास रूप में हो जाते हैं।

तत्व रचना

सामान्यत: मधु में ४०-५०% लेव्यूलोज, ३२-३७% डेक्स्ट्रोज, २०% सुक्रोज तथा अल्प मात्राओं में माल्टोज, डेक्स्ट्रीन, गोंद, तथा इन्वरटेज (invertase) और डायस्टेज (diestase) जैसे एन्जाइम (enzymes) भी पाये जाते हैं। इसमें इतने अधिक गुण होने के कारण ही इसे पंचामृत में सम्मिलित किया गया है।

मधुमक्खी की आन्तरिक शरीर-रचना

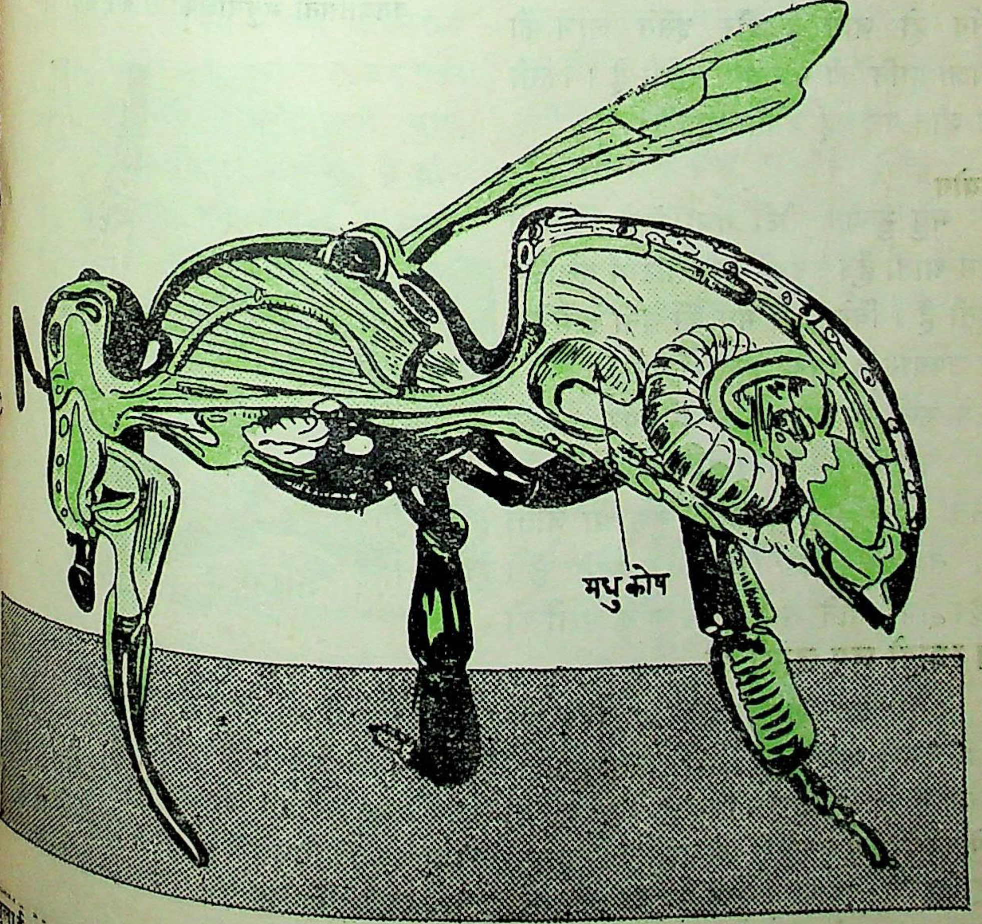

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

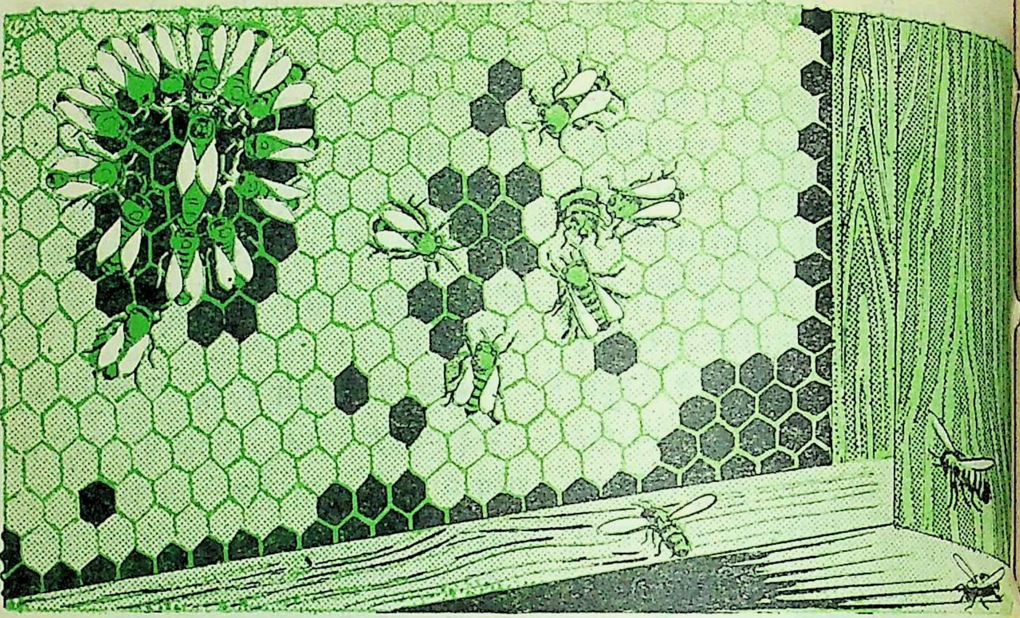

छत्ते की भीतरी दुनिया

मधु का आपेक्षिक भार २०°C ताप पर लगभग १·४५ से १·४८ रहता है। इसे उबालने से इसमें विकृत रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं और इससे लाभ की अपेक्षा हानि की संभावना रहती है। किसी भी शीत पर यह जमता नहीं।

उपयोग

मधु मुख्यतः रोटी तथा केक बनाने में काम आता है। इसकी बनी रोटियाँ मुलायम रहती हैं। विदेशों में मधु की बनी हनीकेक का उपयोग धार्मिक अवसरों पर होता है। इसमें फलों का रस मिला देने पर नाइट्रेट तथा फास्फेट की मात्रा बढ़ जाती है और फलतः इसमें मद्य सरीखा गुण आ जाता है। तब इसे मीड (mead) कहते हैं। कुछेक पेय बनाने तथा तम्बाकू के पत्तों को मुलायम रखने में भी मधु का उपयोग होता है।

बनवासिनी मधुमक्षिकाओं का बड़ा छत्ता

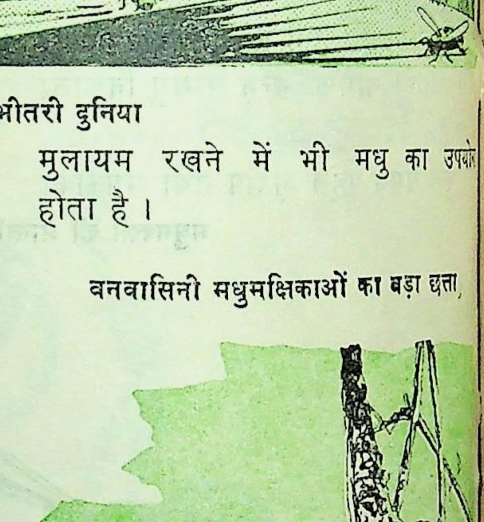

जब स्याही जम जाती थी

प्रसिद्ध नक्षत्रविद् विलियम (सर) हर्शेल नक्षत्रविद्या को अपनाने से पूर्व कुशल संगीतकार थे। सम्राट् जार्ज तृतीय द्वारा राज्य-नक्षत्रशास्त्री बनाये जाने पर उन्होंने यंत्र-संयंत्रों से सुसज्जि वेधशाला बनाना प्रारम्भ किया। अपने पुत्र और पत्नी सहित वे रातों को आकाश-निरीक्षण में तथा नये-नये दूरदर्शी बनाने में लगे रहते थे। महत्त्वपूर्ण विवरण आदि लिखने का कार्य पत्नी के जिम्मे था। वह ठिठुरती सर्दियों में खुली छत पर तब तक लिखती रहती थी, जब तक स्याही उस विकट में जम न जाए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

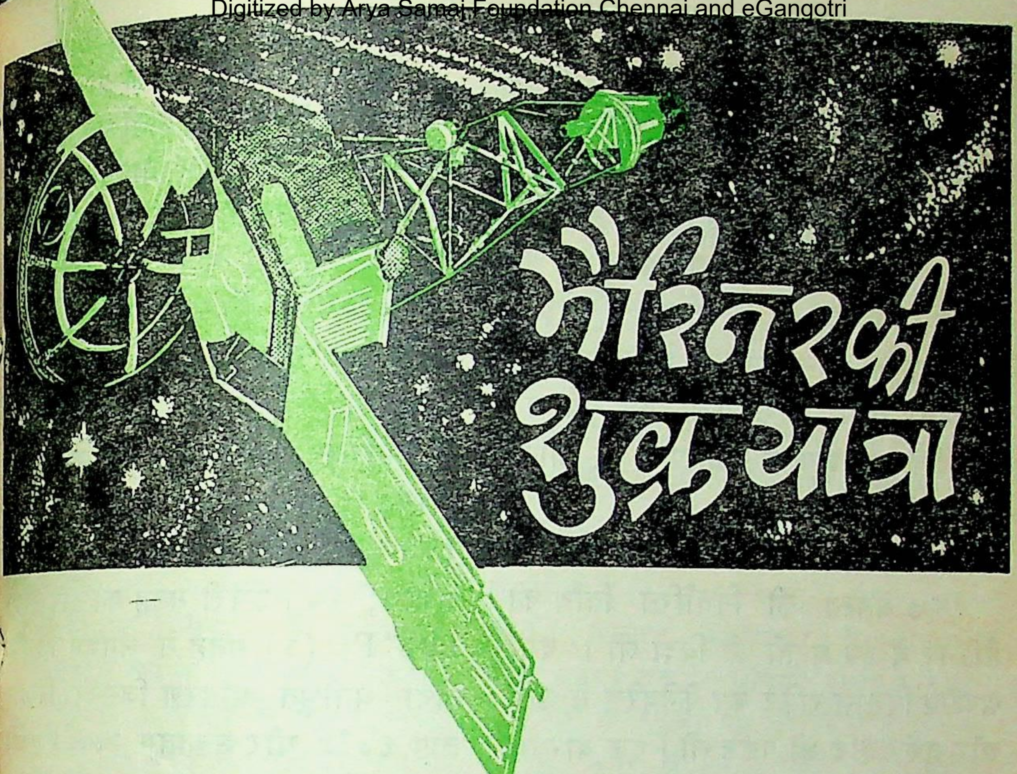

मैरिनर की शुक्र यात्रा

प्रेमलाल टण्डन

मानव-प्रक्षेपित कृत्रिम उपग्रह मैरिनर-२ अपना निर्धारित कार्य समाप्त कर चुका है। अब वह पृथ्वी के बन्धनों से मुक्त, विशाल व्योम में विहार कर रहा है और शुक्र की भाँति सूर्य की अनन्त परिक्रमा में लग गया है। प्रसिद्ध ब्रिटिश नक्षत्रविद् सर बर्नार्ड लावेल के शब्दों में, 'मैरिनर-२ अन्तरिक्ष में भेजे गये मानव निर्मित भू-उपग्रहों में विज्ञान की सर्वोपरि उपलब्धि है'। वस्तुत: यह उपग्रह मानव-निर्माण का ऐसा चमत्कार है जिसने अभी तक के अगम्य शुक्र की सीमा में केवल २१,७०० मील की निकटता से वहाँ का स्थित्यावलोकन ३६ लाख मील दूर इस पृथ्वी पर अपने निर्माताओं तक प्रसारित किया है।

[illegible] की तैयारी

१९६२ की २७ अगस्त का स्मरणीय दिवस था, जब मैरिनर ने अपने अनन्त पथ की ओर इस पृथ्वी से पग उठाया था। इसका निर्माण केलिफोर्निया (अमरीका) की इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी के अन्तर्गत जेट प्रोपल्शन लेबोरेटरी ने किया है।

प्रयोग के लिए सवा दो करोड़ डालर के खर्चे से तीन मैरिनर बनाने पड़े थे। सही रूप में लाने के लिए मैरिनर-२ के कुल वजन को घटाकर एक तिहाई कर देना पड़ा था। २२ जुलाई, १९६२ के प्रारम्भिक प्रयोगों में मैरिनर-१ अपने राकेटों सहित जल कर खाक हो चुका था। उसमें ९० लाख डालर की हानि हुई थी। यह उल्लेखनीय है कि वह बड़ी हानि गणकयन्त्रों में केवल एक संकेत-चिह्न गलत लग जाने से हुई थी।

सबसे विलक्षण बात यह थी कि मैरिनर-२ का सर्वशुद्ध निर्माण सीमित समय में ही करके उसे ऊर्ध्वाकाश में छोड़ने की तिथि और घड़ी को चूकना नहीं था। २७ अगस्त, १९६२ इसलिए महत्वपूर्ण था कि अनन्त वर्षों के पश्चात् और आगे भी अनिश्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल के लिए केवल १४ दिसम्बर १९६२ को शुक्र ग्रह इस अवस्था में आने को था कि गणनासिद्ध यात्रा के १०९वें दिन मैरिनर उसके निकटतम पहुँच सकता था। उस अवसर को चूकना एक अपूर्त क्षति प्रमाणित होता। इसके लिए मैरिनर को पृथ्वी की परिक्रमा दिशा के विपरीत ही छोड़ना आवश्यक था, अन्यथा पृथ्वी के आकर्षणबल से छूटना तथा उसके फलस्वरूप सूर्य की ओर खिंचकर शुक्र के कक्षा-पथ पर आना सम्भव न था।

भू-लोक से विदाई

२७ अगस्त की निर्धारित तिथि को मैरिनर ने इस धरती से विदा ली। दस-खण्डीय विशाल राकेट केप केनेवरेल से उठा और तुरंत गति भी पकड़ ली। एक बार तो राकेट ने गोल चकरी घूमकर वैज्ञानिकों को चिन्ता में डाल दिया किन्तु दूसरे ही क्षण सम्हल भी गया। विदाई देने वाले वैज्ञानिक-दल के एक सदस्य ने चैन की साँस ली और कहा—'विफलताओं की कहानी खत्म हुई और सफलता का स्वर्णद्वार खुल गया।'

ठीक २७वें मिनट पर संवाद मिला कि मैरिनर ने सही कक्षा-पथ पकड़ लिया है और धरती की पकड़ के अन्तिम दौर से निकलने वाला है। एक घण्टा और व्यतीत होने पर संकेत मिला कि वह सूर्योन्मुख हो गया है, अर्थात् अपने १६॥ फुट लम्बे पंख सूर्य की ओर फैला दिये हैं ताकि उनमें लगे हुए सौर-संग्राहक (solar panels) सूर्य-रश्मियों से विद्युतोत्पादन कर सकें।

उड़ानगत कठिनाइयाँ

निर्धारित १०८ दिन की यात्रा करके १०९वें दिन शुक्रग्रह से भेंट करने तक मैरिनर का मार्ग अनेक कठिनाइयों से भरा हुआ था। इसे अन्तरिक्ष के कणों, रश्मियों, उल्काओं, घर्षण तथा ताप आदि अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ा था। उल्काओं के अतिरिक्त ५,००० मील प्रति सेकण्ड के प्रचण्ड वेग से सूर्य से आती हुई परमाणुओं की बौछार, अति उच्च ताप तथा सूर्य से विमुख भाग पर भयानक शीत आदि विघ्न कम भयावह नहीं थे। फिर भी मैरिनर समस्त बाधाओं को पार करता हुआ आगे बढ़ता चला गया।

रहस्य का पर्दा उठा

मैरिनर ने शुक्रग्रह के अवलोकनार्थ निम्न तथ्य मुख्यतः प्रसारित किये: (१) शुक्रग्रह पर जीवन-लक्षणों का सर्वथा अभाव; (२) ऊपरी सतह का ताप लगभग ८००°F; (३) सतह से लगभग ४५ मील ऊँचा घनीभूत आवरण जिसका निम्नतम ताप ६०°F और उच्चतम २००°F; (४) दक्षिणार्द्ध की ओर एक रहस्यपूर्ण शीत-भाग कदाचित एवरेस्ट से भी ऊँचा कोई गिरि-शिखर।

इन रहस्यों के अतिरिक्त निम्नांकित अन्य विवरण भी प्राप्त हुए :

१. वायुमण्डल जीवनधारण के सर्वथा अयोग्य है, क्योंकि उसमें कार्बन डाइआक्साइड की अधिकता तथा आक्सीजन और आर्द्रता का अभाव है।

२. घना गैसीय आवरण १५-२० मील मोटा है किन्तु सतह ४५ मील की ऊँचाई के पश्चात् प्रारम्भ होती है। फलतः सूर्य का प्रचण्ड ताप तो शुक्र की धरती पर बेरोक-टोक उतर आता है, किन्तु परावर्तित नहीं हो पाता।

३. सतह तथा वातावरण नितान्त शुष्क है और वायुमण्डल का दबाव पृथ्वी की अपेक्षा १०-२० गुना अधिक होने से सूर्य के ताप का प्रसारण सहज हो जाता है।

४. वान एलन की चुम्बकीय पेटी जो पृथ्वी को लपेटे हुए है, उसका वहाँ अभाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. वहाँ की सतह पर यदि खड़े होकर उस ग्रह को पृथ्वी की भाँति स्थिर मान लिया जाए तो एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का वहाँ एक दिन, यहाँ के २२५ दिनों के बराबर होगा।

मुख्य उपकरण

मैरिनर के असंख्य उपकरणों में निम्न मुख्य थे। संकेतों और चिह्नों द्वारा विवरण प्राप्त करने के लिए टेलीटाइप तथा पंच-टेप। अन्तरिक्ष की चुम्बकीय परिस्थिति ज्ञात करने के लिए चुम्बक-निरीक्षक प्लेटें। विशिष्ट धातु-निर्मित पाँच इंच लम्बी, तीन इंच चौड़ी ये प्लेटें मैरिनर के निचले भाग में लगायी गयी थीं। कास्मिक धूलि-कणों की बौछार को एक टेलीफोन के डायफ्राम की भाँति संवेदन रूप में ग्रहण करके ये प्लेटें प्रदर्शित करती थीं। प्लेटों के निकट, तीन ट्यूबनियों युक्त एक बक्से में गाइगर गणक यन्त्र रखा गया था। वह यन्त्र अन्तरिक्ष-किरणों की जानकारी देता रहेगा।

विजय से पूर्व की रात

१३ दिसम्बर की रात विजय से पूर्व की रात थी। मैरिनर ने १०८ दिन पूरे कर लिये थे। मैरिनर को प्रक्षेपित करने वाला वैज्ञानिक-दल पृथ्वी पर अपने कण्ट्रोल-रूम में यन्त्रों पर नजर गड़ाये हुए था। समय रात के १ बजे का था। सिगनल आने में देर हो रही थी।

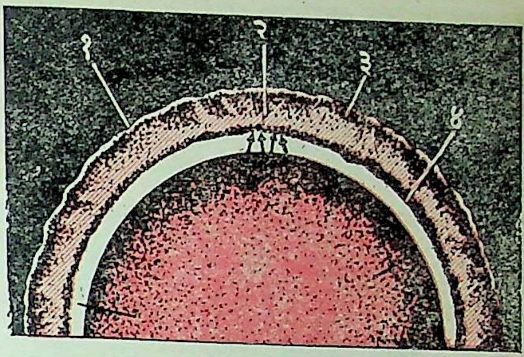

शुक्र के गिर्द काफी घनीभूत बादलों का आवरण है जो वहाँ के ताप को ८००°F तक बनाये रखता है

तीन घण्टे और बीत गये। २-४० बजे नयी आशा बँधी कि ४-१६ पर तो संवाद अवश्य ही मिल जाएगा। कण्ट्रोल-रूम से नया संकेत भेजा गया। तब तक मैरिनर पृथ्वी से इतनी दूरी पर जा पहुँचा था कि प्रकाश-गति से गये हुए संकेत को मैरिनर का प्रत्युत्तर लेकर लौट आने में छ: मिनट लग गये! उत्तर उत्साहवर्द्धक था। कण्ट्रोल-रूम तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा।

दूसरे दिन, १४ दिसम्बर की मध्यरात्रि को १२ बजकर ५० मिनट पर मैरिनर ने शुक्र की दुनिया में प्रवेश करके २१,७०० मील की दूरी से प्रथम झाँकी प्राप्त की और अपने निर्माताओं को ३६ लाख मील दूर, अपने शुक्र-अभियान की विजय-दुंदुभी सुना दी!

आखिर मैरिनर-२ ने शुक्र का रहस्यावरण भेद ही दिया और ३६ लाख मील दूर पृथ्वी पर अपने निर्मायकों को शुक्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण विवरण-संकेत प्रसारित किये

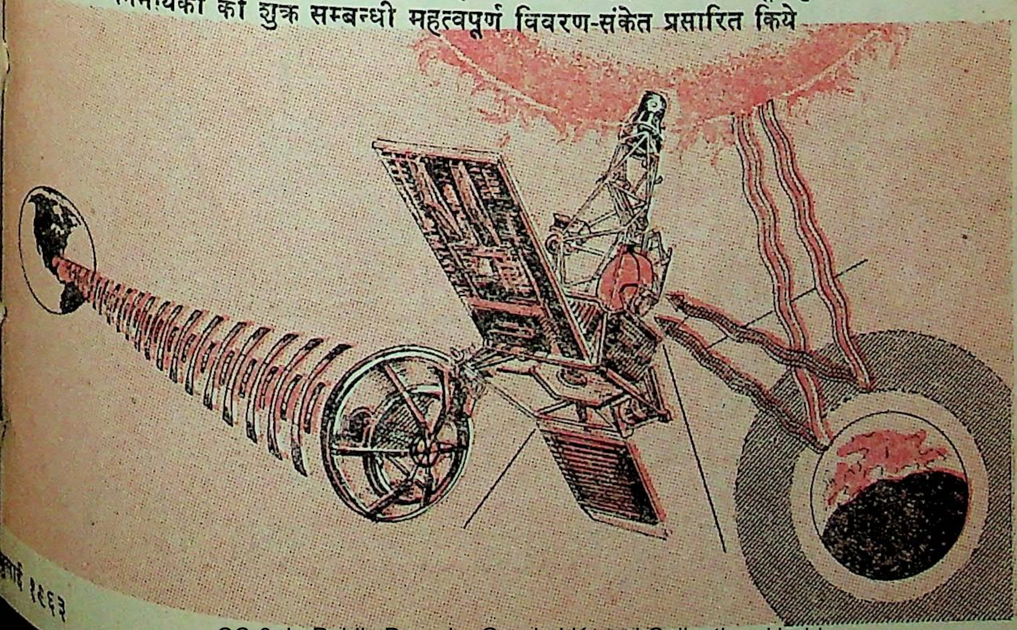

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

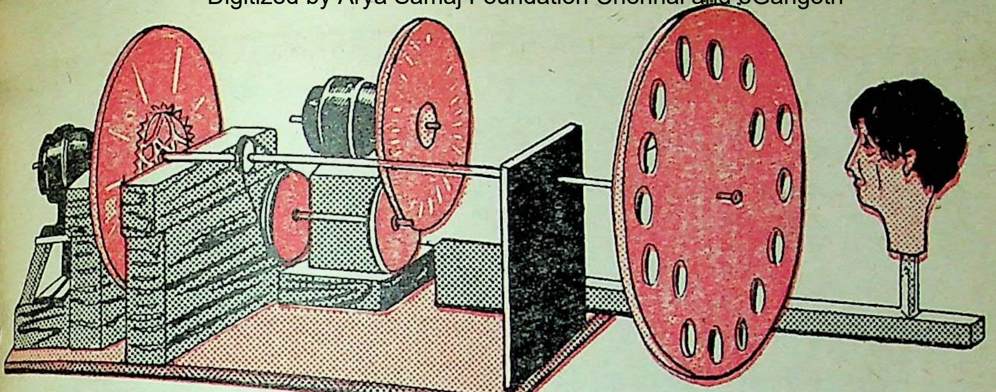

टेलीविजन

केशोराम

दूर की वस्तुएँ देखने के तीन प्रमुख साधन हैं। दूरदर्शी की सहायता से तारों, नक्षत्रों को देखा जा सकता है; सिनेमा-फिल्म की सहायता से कहीं दूर पर किये गये कार्यक्रम को पर्दे पर देखा जा सकता है और तीसरा साधन टेलीविजन का ऐसा अद्भुत है जो मीलों दूर चल रहे कार्यक्रम को रेडियो की भाँति हमें चलने के मध्य ही दिखाया जा सकता है। इसके द्वारा यह सम्भव है कि दिल्ली में निकल रही गणतंत्र समारोह की झाँकियाँ मद्रास में उसी समय देखी जा सकती हैं और कराची में चल रहे क्रिकेट टेस्ट मैच को कलकत्ते में देखा जा सकता है। अभी प्रारम्भिक तथा प्रायोगिक अवस्था में इससे दिखने वाले दृश्यों की दूरियाँ कुछ ही मीलों तक सीमित हैं।

वर्षों का धैर्य और परिश्रम

अनेक आविष्कारों से टेलीविजन के आविष्कार में भिन्नता है। वायुयानों की भाँति इसका भी रूप और प्रकार वर्षों तक अनेक वैज्ञानिकों के परिश्रम द्वारा सुधरता रहा है। यदि इसके आद्य प्रवर्तकों में पाल निप्कोव (जिसने सर्वप्रथम गोल चकरी वाला यंत्र बनाया था) का नाम लिया जाए तो इस पर अनवरत परिश्रम, नये प्रयोग तथा आधुनिक रूप देने वालों में ज्हॉन बेयर्ड को भी न भुलाया जा सकेगा। बर्ज़ीलियस का भी नाम लेना इसलिए आवश्यक होगा कि इसमें प्रयुक्त होने वाली धातु सैलेनियम की खोज उसी ने की थी। इनके साथ ही एक आपरेटर महाशय मि. मे को भी भुलाया न जा सकेगा; क्योंकि उन्होंने सर्वप्रथम यह ज्ञात किया था कि सूर्य के ताप तथा तीव्र प्रकाश में सैलेनियम धातु विद्युतावेशित हो जाती है। उसी सैलेनियम की सूक्ष्म कोशिकाओंयुक्त मोजेक (mosaic) बनाने के लिए जी. आर. कारे का भी आभार मानना आवश्यक होगा। टेलीविजन की कहानी विगत शताब्दी के उत्तरकाल से आरम्भ हुई है।

लगभग ४० वर्ष पूर्व यह टेलीविजन प्रयोगशालाओं की चहारदीवारी में सीमित था। निरन्तर प्रयोग किये जाते रहे और प्रायः ही लोग उड़ती-सी कुछ सुन भी लेते थे। सुनकर उनकी उत्कण्ठा और भी तीव्र हो उठती थी कि कब यह नयी खोज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोगशालाओं की कैद से आजाद होकर घर-घर की वस्तु बन जाए। समय के साथ इसकी प्रगति भी तेजी पकड़ती गयी और आज टेलीविजन की संख्या लाखों तक पहुँच रही है। हमारे यहाँ अभी यह प्रायोगिक अवस्था में है।

सिद्धान्त और प्रयोग

टेलीविजन में समूचा खेल फोटोइलेक्ट्रिक सेलों का है जो चित्रों को विद्युतावेशित लहरों में परिवर्तित करके प्रसारित करती रहती हैं। प्रश्न हो सकता है—यह किस प्रकार सम्भव है कि विभिन्न आवेशों की लहरों को एक ही साथ, एक ही तार पर प्रसारित किया जाए? इसका उत्तर इस एक उदाहरण द्वारा दिया जा सकता है कि—मान लीजिए, आपके पास लिफाफा तो छोटा है और मित्र को भेजा जाने वाला चित्र बहुत बड़ा है। तब उसे किस प्रकार भेज सकेंगे? इस प्रश्न का उत्तर पिछला प्रश्न भी हल कर देगा। उत्तर यह है कि उस बड़े चित्र को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर उनके पीछे संकेत नम्बर डालकर भेजा जा सकेगा, ताकि वह मित्र उन्हें पुनः संयोजित करके पूरा चित्र तैयार कर ले। इसी सिद्धान्त का आश्रय लेते हुए टेलीविजन में मोजेक की प्लेट पर किसी भी चित्र अथवा वस्तावलि को अति सूक्ष्म खण्डों में बाँट दिया जाता है और रिसीवर में उनके द्वारा पुनः संयोजित होकर वह दृश्यपट पर अंकित हो जाता है।

पाल निप्कोव तथा ज्हॉन बेयर्ड द्वारा निर्मित छिद्रोंयुक्त गोल चकरी वाले हस्त-चालित यन्त्रों से बढ़ती-बदलती टेलीविजन की कहानी यंत्रचालित पुर्जे से भी आगे निकलकर इलेक्ट्रानिक टेलीविजन तक आ पहुँची है। टेलीविजन के ट्रान्समीटर को इकोनोस्कोप तथा रिसीवर को काइनेस्कोप कहते हैं। इसकी कार्यप्रणाली की रूपरेखा निम्न सरल प्रयोग से समझ में आ जाएगी।

जिस चेहरे को प्रसारित करना है, इकोनोस्कोप उसका एक सामान्य मूवी कैमरे की भाँति फोटो ले लेगा। अन्तर यह रहेगा कि फोटो फिल्म अथवा निगेटिव प्लेट के स्थान पर वह प्लेट मोजेक की होगी। उस प्लेट पर करोड़ों कोशाओं के रूप में विद्युतावेशित बिन्दु होंगे जिन्हें हम फोटोइलेक्ट्रिक आँखें कहेंगे। यों उस प्लेट पर वह चेहरा एक वस्तु न रहकर करोड़ों बिन्दुओं में विभाजित रहेगा। उन बिन्दुओं को विद्युत लहरों पर प्रसारित करके दूसरे सिरे पर रिसीवर में पुनः संयोजन द्वारा

टेलीविजन द्वारा रंगीन चित्र के प्रसारण तथा प्रदर्शन का सिद्धान्त

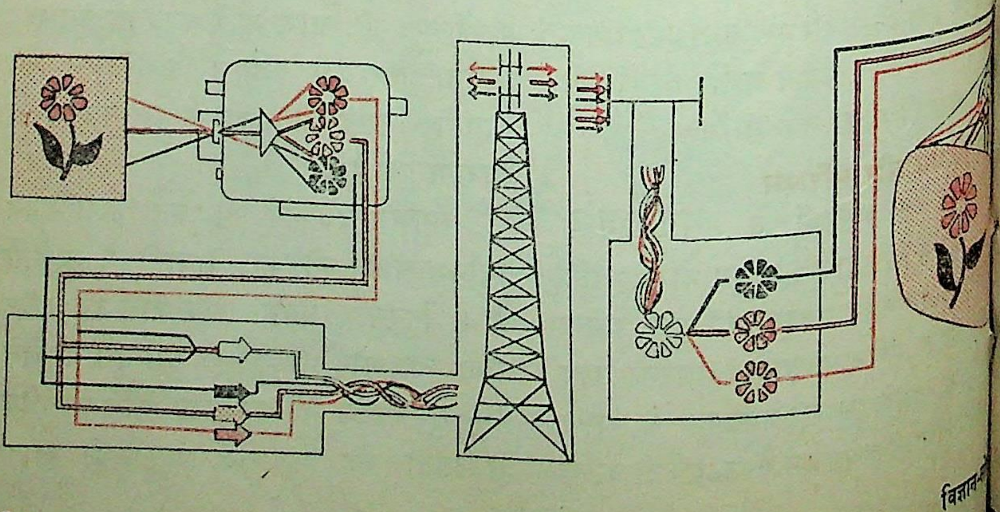

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

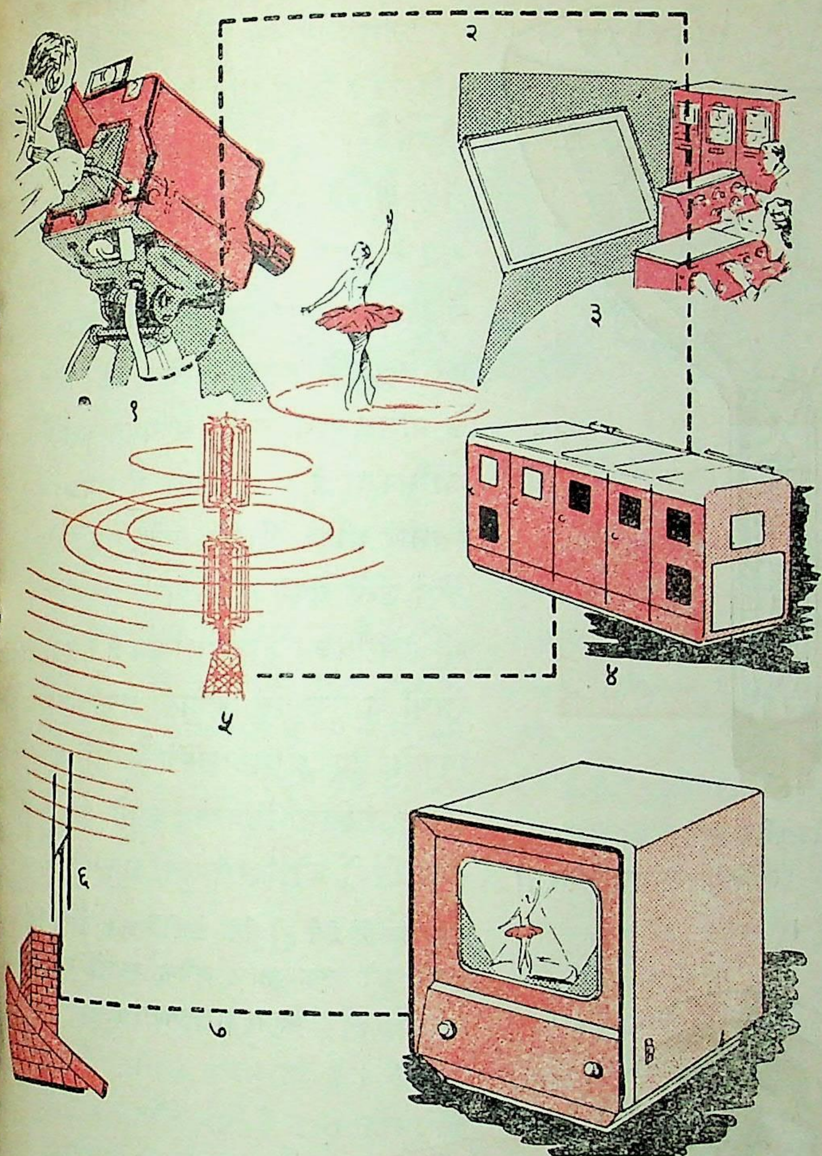

टेलीविजन द्वारा दृश्यांकन तथा प्रसारण

सम्पूर्ण चित्र प्राप्त हो जाएगा। चित्र का यह विभाजन स्कैनिंग (scaning) कहलाता है। यह क्रिया इतनी अकल्पनीय तीव्र गति से होती है कि मानव नेत्र को उसके विभाजन तथा पुनर्संयोजन का आभास नहीं हो पाता और वस्तु सम्पूर्ण ही दिखती है।

टेलीविजन का मुख्य अंग इलेक्ट्रान ट्यूबें होती हैं। इनके अतिरिक्त इलेक्ट्रिक गन, मोजेक की प्लेट, कलेक्टर रिंग आदि भी आवश्यक अंग हैं। इलेक्ट्रिक गन पर जब किसी चित्र अथवा दृश्य की प्रकाश-किरणें पड़ती हैं तब उससे इलेक्ट्रान छूटते हैं। इनका वेग प्रकाश की तीव्रता के साथ बढ़ता जाता है। इनका विद्युतावेश ऋणात्मक होता है। अतः इनके निकल जाने पर इलेक्ट्रान ट्यूब स्वयं धनावेशित रह जाती है। छूटते हुए इलेक्ट्रानों को कलेक्टर रिंग संग्रहीत कर लेती है। रिंग में संग्रहीत होते ही ये इलेक्ट्रान इकोनोस्कोप से हट जाते हैं और रिसीवर की ओर प्रसारित होते रहते हैं।

टेलीविजन के रिसीवर में इकोनोस्कोप जैसी इलेक्ट्रान गन होती है। इसे कैथोड ट्यूब कहते हैं। यह ट्यूब सिरे पर स्थित एक फ्लोरसेंट पर्दे पर इलेक्ट्रानों की बौछार करती है। यहाँ यह बौछार इकोनोस्कोप की बौछार के ठीक समान गति की किन्तु उलटे प्रकार की होती है। फलतः प्रसारित चित्र के इलेक्ट्रान रूपी वे करोड़ों खण्ड पुनः संयोजित होकर चित्र को प्रतिबिम्बित कर देते हैं। रंगीन टेलीविजन इस दिशा में नयी ही उपलब्धि है। उसके द्वारा टेलीविजन के चित्रों में से स्याह-सफेद की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

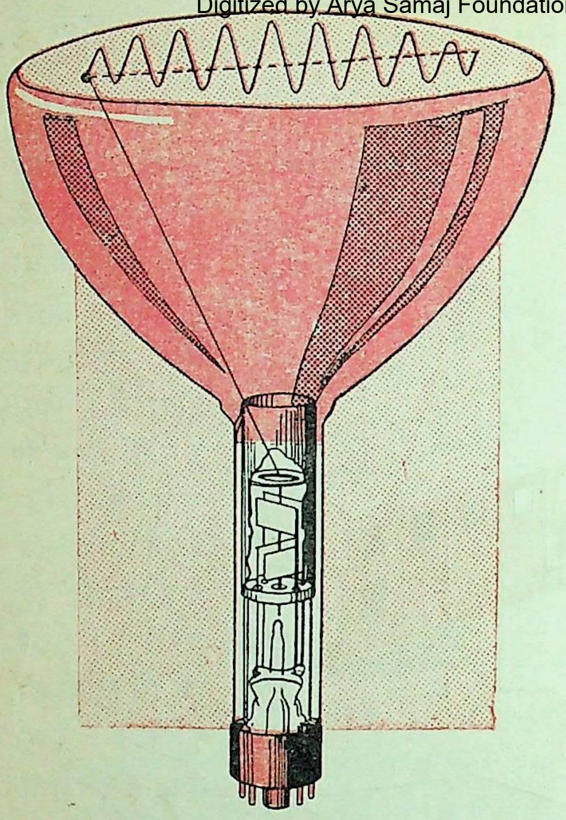

कैथोड-रश्मि ट्यूब

नीरसता हटाकर रंगीनियाँ उत्पन्न करना सम्भव हो गया है ।

टेलीविजन का महत्त्वपूर्ण कार्यक्षेत्र

टेलीविजन को मनोरंजन तक ही सीमित नहीं रहने दिया गया है । राष्ट्रीय सुरक्षा, युद्ध-कालीन कार्य, चिकित्सा तथा शिक्षण के क्षेत्रों में भी इसका महत्त्वपूर्ण योग लिया जा रहा है । उदाहरणार्थ, एक बड़े अस्पताल में चल रहे गम्भीर आपरेशन का दृश्य प्रसारण दूर-स्थित मेडिकल कालेज के विद्यार्थियों के प्रशिक्षणार्थ उनके अध्ययन-कक्ष में किया जा सकता है । युद्धकाल में शत्रुओं के गुप्त स्थलों और रेडियो संकेतों की टोह लेना तथा उन्हें अपने केन्द्रों पर प्रसारित करना भी टेलीविजन द्वारा सम्भव है । इसी प्रकार छात्रों के एक दल सहित प्रकृति-दर्शन को निकले हुए अध्यापकगण टेलीविजन द्वारा अपना सचित्र विवरण अपने विद्यालय के विद्यार्थियों को दिखा-सुना सकेंगे ।

वायुयान में ठेबै ही बैठे टेलीविजन द्वारा लिये गये दृश्यों को एक साथ अनेक स्थलों पर प्रसारित किया जा सकता है

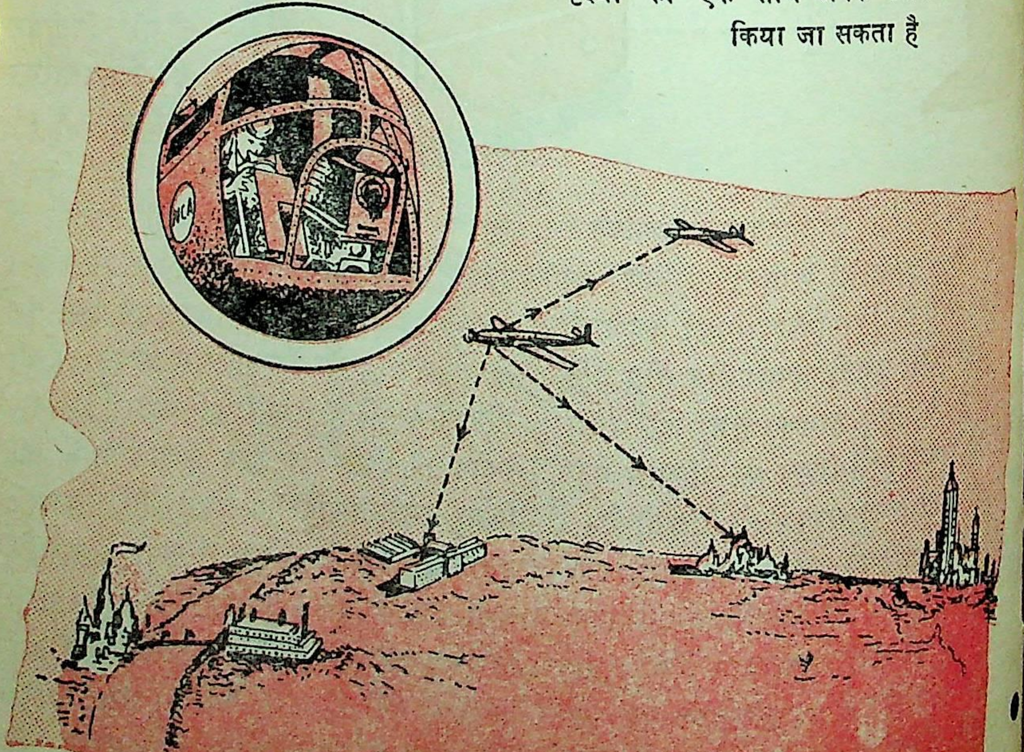

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोलायड

सत्यकुमार

१८६१ में ग्राहम ने घुलने वाले पदार्थों को दो श्रेणियों में बाँटा—केलास तथा कोलायड। केलासीय के उदाहरण हैं मिश्री, नमक, तूतिया आदि। इनके घोल समांग होते हैं तथा छाने जा सकते हैं। कोलायड के उदाहरण हैं मैदा, गोंद, जिलेटिन आदि। यह विषमांग होते हैं। झिल्लियों से भी इनका छनना मुश्किल होता है।

आधुनिक मत के अनुसार ग्राहम का यह विभाजन शुद्ध नहीं समझा जाता। वास्तव में केलास तथा कोलायड किसी एक पदार्थ की दो विभिन्न अवस्थाएँ हैं। केलास में पदार्थ के कण छोटे होते हैं तथा कोलायड में बड़े। पानी में तो साबुन कोलायड अवस्था में रहता है पर एलकोहल में केलासीय रहता है। पानी में नमक केलासीय अवस्था में रहता है और बेन्जीन में कोलायड।

कोलायड पदार्थों से रसायनशास्त्र भरा पड़ा है। इनके उपयोग इतने बढ़ते जा रहे हैं कि भौतिक रसायन की एक शाखा के रूप में कोलायड रसायन का अध्ययन किया जाता है। बड़े-बड़े उद्योग कोलायड पर ही आधारित हैं।

कुछ पदार्थ प्राकृतिक रूप से ही कोलायड अवस्था में मिलते हैं तो कुछ को प्रयोगशाला में कोलायड रूप दिया जा सकता है।

भौतिक विधियों में प्रमुख विधि विद्युत-विच्छेदन की है। जिस धातु का कोलायड-विलयन बनाना हो उसके विद्युदाग्र लेकर उसमें विद्युत-चाप उत्पन्न करने से धातु के कण टूटकर पानी में कोलायड-विलयन बनाते हैं। कोलायडीय-चक्की के द्वारा भी यह प्रयोजन सिद्ध हो सकता है।

रासायनिक विधियों में द्विक-विच्छेदन, जल-विश्लेषण, आक्सीकरण और अवकरण मुख्य विधियाँ हैं।

कोलायडीय विलयन के प्रमुख लक्षण निम्न हैं :

१. कोलायडीय विलयन विषमांग होता है और उसका रसाकर्षण दबाव बहुत कम होता है।

२. कोलायडीय विलयन प्रकाश को परिक्षिप्त कर देता है। यह 'टिण्डल प्रभाव' कहलाता है।

३. कुछ कोलायड कणों पर धनात्मक और कुछ पर ऋणात्मक विद्युतावेश रहता है।

४. यदि किसी कोलायडीय विलयन में कोई विद्युत-विच्छेदन डाल दिया जाए तो उसके कणों का आवेश नष्ट हो जाता है। उसके कण आपस में मिलकर, बड़े होकर, अवक्षेप रूप में नीचे बैठ जाते हैं। यह क्रिया स्कंधन कहलाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

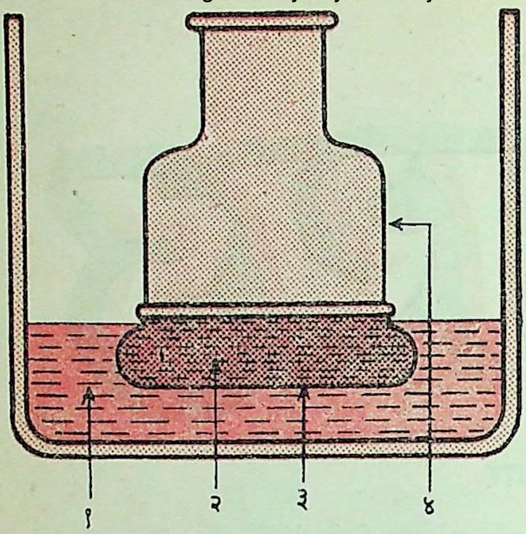

थामस ग्राहम ने इस यंत्र द्वारा पदार्थों की कोलायड अवस्था सिद्ध की थी

५. कोलायडीय कणों की शोषण शक्ति अधिक होती है। दो विरोधी विद्युतावेश वाले कोलायडीय विलयन मिलाने पर दोनों के कोलायडीय पदार्थ अवक्षिप्त हो जाते हैं।

कोलायडीय विलयन किस प्रकार विषमांग होते हैं, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा :

प्रकार	**उदाहरण**
द्रव में गैस	साबुन का झाग
ठोस में गैस	झाँवाँ पत्थर
गैस में द्रव	वर्षा, बादल, कुहरा
द्रव में द्रव	दूध, तेल-पानी का पायस (इमल्शन)
ठोस में द्रव	सिली का जेली
गैस में ठोस	नौसादर का धुआँ, चिमनी का धुआँ।
दव में ठोस	जल में रजत व स्वर्ण के कण तथा बेन्जीन में निकिल।
ठो में ठोस	रंगीन काँच, रत्न, मणि।

नित्य ही हम भाँति-भाँति के कोलायडीय पदार्थों के सम्पर्क में आते हैं। हमारा शरीर भी अधिकांश कोलायडीय है। हमारा भोजन फर्नीचर, मकान, पुस्तकें, सभी कुछ तो कोलायडीय है !

दूध में क्या है ?	जल में वसा
लस्सी	जल में केसीन
मक्खन	वसा में जल
रोटी, बिस्कुट	आटे में वायु
हलवा	ठोस में द्रव
आइसक्रीम	मलाई में बर्फ के कण
रसीले फल	ठोस में द्रव
सिगरेट का धुआँ	वायु में कार्बन के कण

अनेक ओषधियाँ कोलायड रूप में प्रयुक्त होती हैं। अनुमान है कि कोलायडीय ओषधियाँ शरीर में जल्द घुल-मिल जाती हैं। इनकी शोषण शक्ति तीव्र होने के कारण इनका प्रभाव तुरन्त होता है। कोलायडीय सोना, चाँदी, कैल्सियम तथा मैंगनीज आदि इंजेक्शनों में प्रयुक्त होते हैं। कीटाणुनाशन के लिए भी कोलायडीय गंधक का उपयोग किया जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि धुआँ कोलायडीय अवस्था है। शहरों में छोटे-बड़े कारखानों की चिमनियाँ दिन-रात धुआँ उगलती हैं जिससे वातावरण दूषित हो जाता है। उससे बचने के लिए चिमनियों का धुआँ बाहर निकलने के पूर्व ही अवक्षिप्त कर लिया जाता है। इससे कार्बन के कण नीचे बैठ जाते हैं। गर्म गैस चिमनी से बाहर हो जाती है और वायुमण्डल में मिल जाती है।

फिटकरी द्वारा जल का शुद्धीकरण औद्योगिक रूप से किया जाता है। वह क्रिया भी कोलायड रसायन पर आधारित है। जल में जो मिट्टी आदि के कण होते हैं फिटकरी डालने से वे तली में बैठ जाते हैं। उन कणों के साथ ही सूक्ष्माणु भी जो उपस्थित हों, नीचे पहुँच जाते हैं।

रबर भी कोलायड का उदाहरण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रबर के वृक्ष से जो स्राव निकलता है उसमें ऋणावेशित कोलायड होते हैं। रबर की जो वस्तु बनानी हो, साँचा बनाकर रबर के रस में डाल देते हैं। फिर साँचे को धनावेशित बना देते हैं। फलस्वरूप वह वस्तु रबर की तैयार हो जाती है। इसी प्रकार चमड़ा कमाने में कच्चे चमड़े पर टेनिन की प्रक्रिया कराते हैं। ये दोनों पदार्थ कोलायडीय हैं तथा इन पर विपरीत विद्युत आवेश होते हैं। अतः चमड़ा कठोर हो जाता है और सड़ने की दुर्गन्ध नहीं आती।

साबुन द्वारा गन्दे कपड़ों की सफाई कोलायडीय प्रभाव से होती है। पानी में बना साबुन का कोलायडीय विलयन गन्दगी का शोषण कर लेता है और चिकनाई बनाकर दूर कर देता है।

पानी की उपस्थिति में सीमेन्ट पत्थर की तरह दृढ़ हो जाता है, कैल्सियम सिलीकेट के जेली-गुण पर निर्भर करता है। सीमेन्ट की कोलायडीय परीक्षा करके उसकी मजबूती आदि का अनुमान लगाया जाता है।

रंग के उद्योग में कोलायड सर्वेसर्वा है। रंग कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो, सामान्यतः कपड़े पर ठीक नहीं चढ़ेगा। अतः कपड़े को पहले किसी बंधक या रंगस्थापक में डुबो लेते हैं। कपड़ा पहले रंगस्थापक को शोषित करता है तत्पश्चात् रंग के शोषण द्वारा पक्के रंग का हो जाता है।

नालियों के गन्दे पानी से गन्दगी को अलग करके खाद के काम में ले लिया जाता है। वह निथरा हुआ पानी गन्दगी दूर हो जाने के कारण रोग फैलाने योग्य नहीं रहता। अन्य उदाहरण देखें तो फोटोग्राफी की प्लेट अथवा फिल्मों पर जिलेटिन का सिलवर ब्रोमाइड व्याप्त रहता है।

गुलाबी रंग के काँच में कोलायडीय स्वर्ण के कारण ही रंग का प्रभाव होता है। कृत्रिम लाल-मणियों में कोलायडीय क्रोमियम के कारण रंग होता है। ग्रेफाइट भी कोलायडीय अवस्था में ही प्रयुक्त होता है।

कोलायड अवस्था में प्राप्त सेल्यूलोज द्वारा रेयन के रेशे का निर्माण

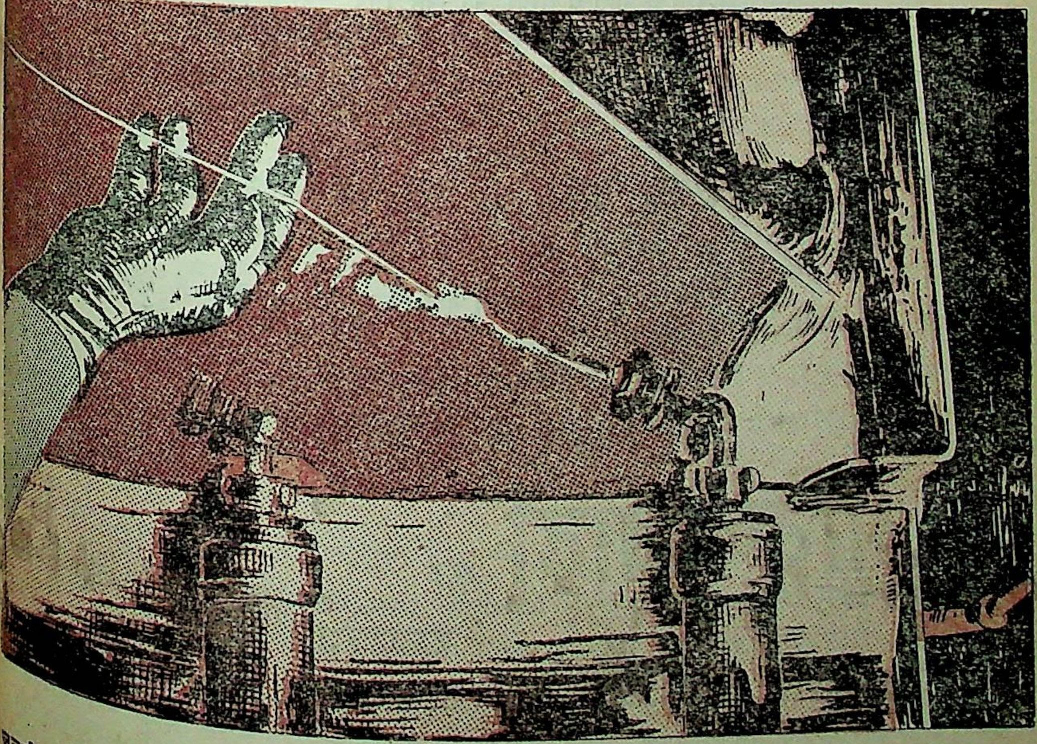

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

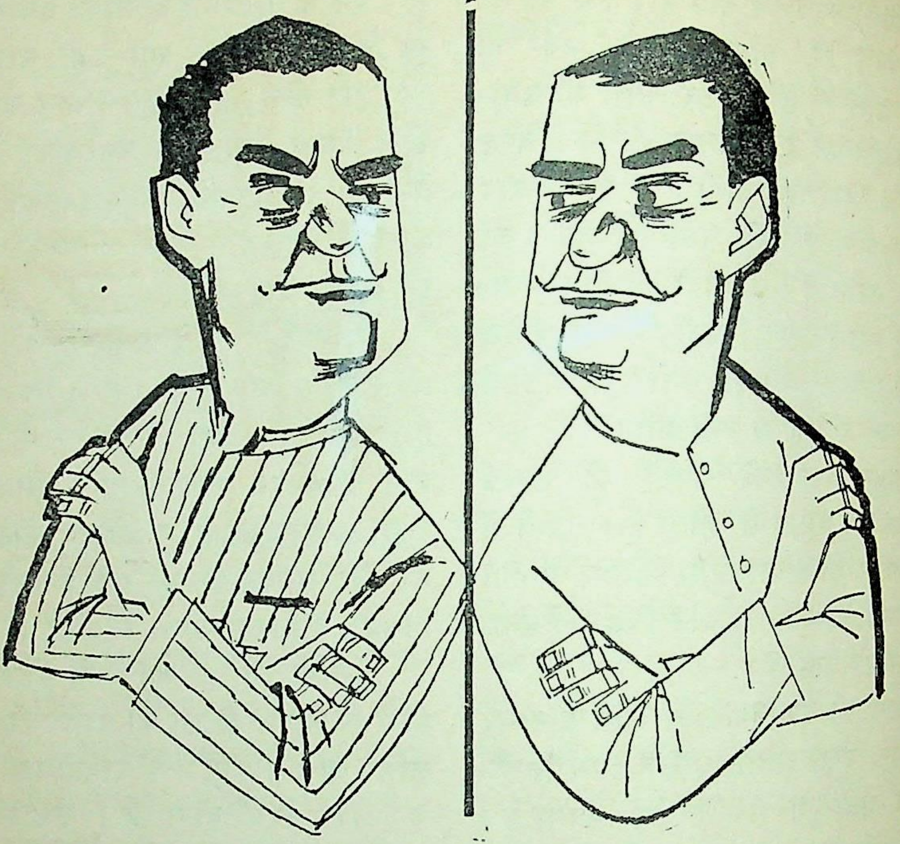

तुलना न कीजिए

हम में से बहुत से लोगों को यह पसंद नहीं है कि हमारी पड़ौसियों से तुलना की जाए। ऐसी ही बात मेट्रिक बाटों के बारे में है।

मेट्रिक प्रणाली से पूरा लाभ उठाने के लिये जरूरी है कि उनका ज्यों का त्यों इस्तेमाल किया जाए जैसे कि १०० ग्राम, २०० ग्राम, ५०० ग्राम या १ किलोग्राम।

मेट्रिक वजन का जोड़-तोड़ के सेर, छटांक न बनाइये।

इसमें आपका बेकार समय नष्ट होगा तथा लेन-देन में नुकसान हो सकता है।

सही और सुविधाजनक लेन-देन के लिए,

पूर्ण इकाइयों में

मेट्रिक बाटों का

प्रयोग कीजिए

DA 63/70

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रेफाइट को टैनिक की उपस्थिति में पीसकर कोलायडीय बना लिया जाता है।

युद्ध काल के गैस-रक्षावरण (gas mask) का महत्त्व किसी से छिपा नहीं। युद्धस्थल की अनेक विषैली गैसों को सोखने के लिए गैस मास्क में कोलायडीय कोयला ही होता है। कोयले की अधिशोषण शक्ति तीव्र होती है।

बादलों को देखें तो मालूम होगा कि वे भी कोलायडीय विलयन के विभिन्न रूप हैं। जब ये ठण्डे क्षेत्र में पहुँचते हैं तो जल की बड़ी-बड़ी बूंदें बन जाती हैं, जो गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे गिरने लगती हैं। कभी-कभी तो दो विपरीत आवेश के बादल एक-दूसरे को प्रभावित कर देते हैं और बरस पड़ते हैं। इसी आधार पर वायुयान द्वारा सूखी बर्फ गिराकर उन्हें मन चाहे क्षेत्रों पर बरसने के अनेक सफल प्रयोग किये गये हैं।

कोलायड की महिमा का वर्णन कहाँ तक किया जाए! समुद्र के पास नदियाँ जो डेल्टा बनाती हैं वह कोलायड का ही रूप है! कोलायडीय गुण के कारण ही आकाश नीला दिखाई देता है।

भूमि की मिट्टी का कोलायडीय होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि मिट्टी कोलायडीय न होगी तो उसमें अधिशोषण की शक्ति नहीं होगी। मिट्टी में उपस्थित अन्य कोलायडीय पदार्थ हैं, एल्यूमिनियम व आइरन हाइड्राक्साइड, विभिन्न सिलीकेट

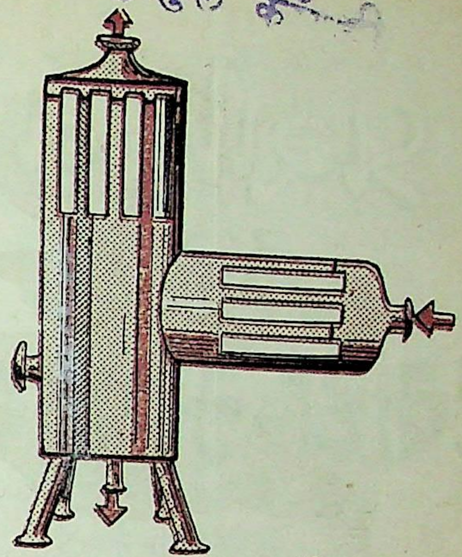

इस पृथक्कारी यंत्र द्वारा किरासन-पानी के मिश्रण से दोनों को पृथक किया जा सकता है

तथा बैक्टीरिया। मिट्टी में खाद का सुरक्षित रहना कैल्सियम और पोटैशियम के अधिशोषण पर निर्भर करता है।

फेन विधि द्वारा सल्फाइड अयस्कों से अयस्कों को अलग करने के लिए तेल-पानी का इमल्शन प्रयुक्त किया जाता है। धात्विक अयस्क मुख्यत: तेल के भाग में ऊपर आ जाता है।

दाढ़ी बनाते में प्राय: ही ब्लेड लगने से खून निकल आता है जो फिटकरी लगाने से तुरन्त बन्द हो जाता है। इसका कारण रक्त का कोलायडीय होना है। फिटकरी की प्रक्रिया से वह वहीं जमकर रुक जाता है।

जीवन के किसी क्षेत्र में, उद्योग के किसी विभाग में, तथा प्रकृति के किसी भी प्रांगण में चले जाएँ, कोलायड सर्वव्यापी हैं।

विटामिन की अधिकता भी हानिकारक

प्राय: देखने में आता है कि रोगनाशक औषधियों का असंयमित प्रयोग प्राणघातक बन जाता है। विटामिनों के बारे में भी इस तथ्य का प्रतिपादन पश्चिम जर्मनी के चिकित्सकों ने किया है। उदाहरण-स्वरूप अस्पताल में एक रोगी ने अपनी हालत सुधरने के प्रारम्भ में विटामिन ए की गोलियाँ अधिकता से ले लीं। इससे उसके प्राणों पर आ पड़ी। बड़ी देर में डाक्टरों को इसका कारण ज्ञात हुआ और उन्होंने रोगी से उन गोलियों की शीशी को लेकर फेंक दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशीतन द्वारा खाद्य-संरक्षण

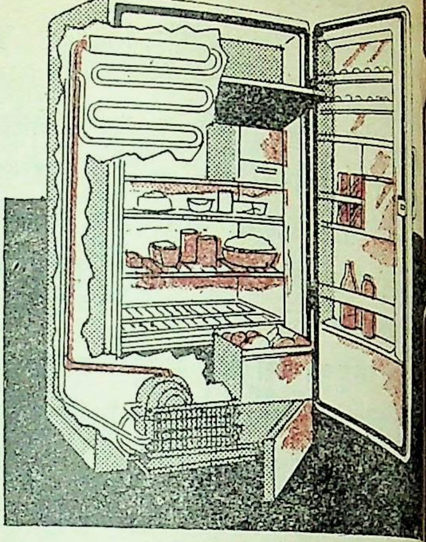

बनवारीलाल शर्मा

रेफ्रिजरेशन की कहानी बहुत पुरानी है—प्रागैतिहासिक काल की। आदि मानव ने शीत के प्रभाव को सर्वप्रथम पहचाना और उसका उपयोग भी किया। उसने देखा कि शिकार करके लाये हुए जिन प्राणियों को गुफा के भीतरी ठण्डे कोनों में पटक दिया जाता था वे अधिक समय तक खाने योग्य रहते थे। इसके विपरीत, जिन्हें गुफा के बाहरी खुले ताप में छोड़ दिया जाता था वे शीघ्र सड़ने लगते थे। कालान्तर में यह ज्ञान विकसित होता चला और मानव ने देखा कि सर्दियों में उसका कार्य सरल हो जाता था। तब वह अपने खाद्य भंडार को बर्फीली चट्टानों तथा हिमाच्छादित सतहों में गड्ढे खोदकर दबा देता था। यों, वह एक बार के संग्रह से महीनों काम चला लेता था। सैद्धान्तिक रूप से रेफ्रिजरेशन का प्रारम्भ तब तक हो चुका था।

प्रशीतन आवश्यक क्यों ?

सामान्यतः खाद्य वस्तु पकी अवस्था में हो अथवा कच्ची, यदि उसमें पानी का अंश है तो कुछ ही समय बाद उसके रंग-रूप, स्वाद-सुगन्ध और गुणों में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो जाता है। यह परिवर्तन प्रत्येक वस्तु के लिए भिन्न-भिन्न रहेगा। रोटी हो या डबलरोटी, कच्चा दूध हो या आलू, इनमें से कोई सुबह से शाम तक, कोई दूसरे तीसरे दिन खट्टा हो जाएगा, सड़ जाएगा, फेंक देने योग्य हो जाएगा। आमिष-आहार का भी यही हाल है। देखा गया है कि सर्दियों की अपेक्षा गर्मियों में यह शिकायत अधिक रहती है। खाद्यपदार्थों की विकृत अवस्था को मुख्यतः निम्न पाँच श्रेणियों में बाँटा जा सकता है: (१) रसीले पकवानों का सूख जाना, (२) फलों आदि का अधिक पक जाना, (३) दूध का फट जाना, खट्टा हो जाना, (४) खुला रहने से चूहे, बिल्ली, मक्खियों तथा चींटियों आदि द्वारा खराब हो जाना, तथा (५) बैक्टीरिया और फन्जाई जैसे सूक्ष्माणुओं द्वारा आक्रान्त हो उठना। बैक्टीरिया की प्रक्रियाओं के प्रत्यक्ष उदाहरण दूध को दही, गूँधे हुए आटे को खमीर और शीरे को शराब में बदल देना है।

उपरोक्त पाँच मुख्य दोषों से सुरक्षित रखने के लिए कुछ खाद्य वस्तुओं को भली प्रकार सीलबन्द, तो कुछ को हवाबन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

किया जाता है। कुछ को पैक अवस्था में, तो कुछ को खुली अवस्था में काफी निम्न ताप (शीत) पर रखा जाता है। विभिन्न पदार्थों के शीतलांक भिन्न-भिन्न रहते हैं। उदाहरणार्थ, टमाटर, सन्तरे और अंगूर ५२°F, केले ५३ से ५८°F और सेब ३७ से ४०°F के ताप तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं। पकवानों को यदि हिमांक से भी नीचे १४°F तक के शीत में रखा जाए तो सूक्ष्माणु निष्क्रिय हो जाएँगे और पकवानों का कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे।

इसी प्रकार आमिष (meat) का उदाहरण दिया जा सकता है। इंग्लैण्ड में खपने वाले भेड़-बकरों का आमिष हजारों मील दूर न्यूजीलैण्ड से प्रचुर मात्रा में मँगाना पड़ता है। कम से कम दो सप्ताह तो मार्ग में ही लग जाते हैं और पहुँचने के पश्चात् भी दो-तीन महीने रखे रहना पड़ता है। अतः उसके दोष निवारण के लिए प्रारम्भ ही में उसे ८°F पर पैक कर लिया जाता है और स्टीमर के प्रशीतन-कक्ष में ही रख-कर पहुँचाया जाता है। तब तक यद्यपि ६° का ताप बढ़ जाता है, फिर भी उसके स्वाद आदि में अन्तर नहीं हो पाता।

बर्फ की फसलें

आज से २००० वर्ष पूर्व जो चलन था वही कहीं-कहीं आज भी प्रचलित है। वह यह कि शीत ऋतु में पहाड़ों पर छायी हुई प्राकृतिक बर्फ को लोग खेतों की फसल की तरह इकट्ठा कर लेते थे और वर्ष के शेष गर्म दिनों में उसका उपयोग करते थे। प्राचीन मिस्र के शासक और धनिक व्यक्ति विविध उपायों से बर्फ का संग्रह करते थे। उस बर्फ का उपयोग वे विभिन्न पेयों को ठण्डा करने में तथा खाद्य पदार्थों के संरक्षण में करते थे। जहाँ पहाड़ों से बर्फ लाना संभव न होता, वहाँ विस्तृत खेतों में बड़ी-बड़ी क्यारियाँ बनाकर मिट्टी के चौड़े, खुले मुँह के पानी भरे पात्र लाखों की संख्या में सजा दिये जाते थे। शीत की रातों को उनकी सतह पर बर्फ की जो पतली चादर जम जाती थी उसे उतारकर इकट्ठा कर लिया जाता था।

एक दन्तकथा है कि भारत-आक्रमण के दौरान सिकन्दर को जब अपना मदिरा भंडार ठण्डा करने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उसके आदेश पर सेनापति द्वारा पहाड़ों की ओर दौड़ाये गये हजारों सैनिक पहाड़ों से बर्फ बीन लाये थे।

वह राजसी प्रशीतन मँहगा था

मार्कोपोलो के यात्रा-विवरणों से ज्ञात होता है कि उन दिनों एशियाई देशों में भी बर्फ और बर्फ से ठण्डे किये हुए दूध, आइस-क्रीम, शर्बत आदि वस्तुओं का प्रचलन था, किन्तु राजघरानों तथा धनिकों तक ही सीमित था। जब कभी बर्फ का अभाव होता था तब खाद्य पदार्थों को नमक तथा विशेष मसाले में सुरक्षित रखा जाता था। इस पर भी शीत-संरक्षण के अभाव में जिसे जो वस्तु मन चाहे अवसर पर न मिल पाती थी। बगैर प्रशीतन, फलों का इधर-उधर भेजना संभव ही नहीं था। उन दिनों इंग्लैण्ड का सामान्य नागरिक सन्तरे का चित्र ही देखकर सन्तोष कर लेता था और धनिक व्यक्ति स्पेन पहुँचकर सन्तरे वृक्षों से तोड़कर ताजा खाता था। इन कठिनाइयों से पार पाने के लिए बर्फ का किसी भी प्रकार संग्रह अथवा उत्पादन और भी आवश्यक हो गया।

त्वरित प्रशीतन अधिक उत्तम

खाद्य-पदार्थों को बर्फ द्वारा ठण्डा करने में भी एक सूक्ष्म अन्तर है, यह रहस्योद्-घाटन अमरीकन वैज्ञानिक बर्ड्स आई (Birds Eye) ने किया। उसने सिद्ध किया कि किसी खाद्य-वस्तु पर यदि मन्द गति से

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

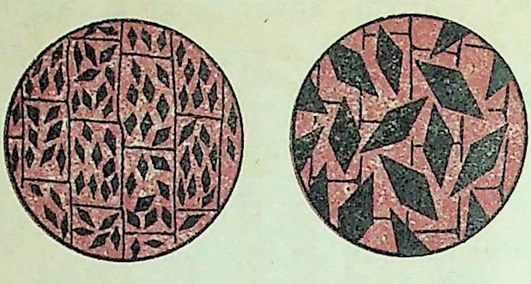

(बायें) त्वरित और (दायें) मन्द प्रशीतन का भेद—**त्वरित क्रिया में खाद्यकण तुरन्त जम जाते हैं और वस्तु का स्वाद अपरिवर्तित रहता है। मन्द क्रिया में अपेक्षाकृत बड़े खाद्यकणों के स्फटिक बनते हैं जो कोशिकाओं की दीवारें छिन्न-भिन्न कर देते हैं। फलतः ऐसी वस्तुओं का स्वाद बदल जाता है और कहीं-कहीं बिगड़ भी जाता है**

कार्य किया भी जाए तो खाद्य-कणों की कोशाओं में बर्फ के अपेक्षाकृत बड़े स्फटिक बन जाएँगे। फलतः कोशाओं की दीवारें टूट जाएँगी और उस द्रव के साथ ही पदार्थ-रस बह जाने से वह वस्तु बेस्वाद लगेगी। इसके विपरीत, यदि वस्तु को त्वरित वेग से जमा दिया जाए तो उसकी कोशाओं में नन्हे-नन्हे स्फटिक बन जाएँगे। उनमें द्रव्य-रस भी जम जाएगा और स्वाद में अन्तर नहीं पड़ेगा।

आधुनिक प्रशीतन रेफ्रिजरेटर द्वारा

खाद्य-प्रशीतन की यह कहानी आदि युग से आरम्भ होकर आधुनिक युग तक आयी, तब तक विज्ञान ने मानव को कृत्रिम हिम अर्थात् बर्फ बनाना भी संभव करा दिया। पानी की बर्फ के साथ ही सूखी बर्फ भी अनेक उपयोग में प्रचलित है। सन् १९२० में बर्फ द्वारा प्रशीतन की प्रथा क्रान्तिकारी रूप से परिवर्तित हो गयी। उससे पूर्व तक बर्फ की पेटियाँ, आलमारियाँ तथा बड़े-बड़े कक्ष केवल कुछ ही बड़े उद्योग संस्थानों तथा बिक्री केन्द्रों तक सीमित थे।

१९२० के क्रान्तिकारी परिवर्तन ने यह सुलभ कर दिया कि बगैर बर्फ और बगैर अन्य किसी झंझट के शुष्क विधि द्वारा ही प्रशीतन संभव हो जाएगा। गर्मी के दिनों में उन पूर्व प्रचलित बर्फ की पेटियों की बर्फ बार-बार बदलना बड़ा असुविधा-जनक और खर्चीला बैठता था। तिस पर उसकी क्षमता भी २-३ दिन की ही रहती थी। अब इस शुष्क प्रशीतन द्वारा बर्फ के झंझट से तो पीछा छूटा ही, क्षमता भी दो-तीन गुनी बढ़ गयी। फलस्वरूप रेफ्रिजरेटर का उपयोग बढ़ गया है।

आज का रेफ्रिजरेटर

कोई भी द्रव पदार्थ जब वाष्पन द्वारा वायु रूप में परिवर्तित होता है तब वह अपने माध्यम का तथा निकट का ताप सोख लेता है। परिणाम यह होता है कि उनका ताप गिर जाता है। आप जब नहाकर गीले बदन खड़े रहते हैं, उतनी देर अधिक ठण्ड जो लगती है उसका यही रहस्य है। जितने वेग से पदार्थ वाष्पित होगा, माध्यम में उतनी ही अधिक शीतलता उत्पन्न होगी। पानी की अपेक्षा स्पिरिट में उँगली डुबोकर बाहर

आधुनिक गृहोपयोगी रेफ्रिजरेटर

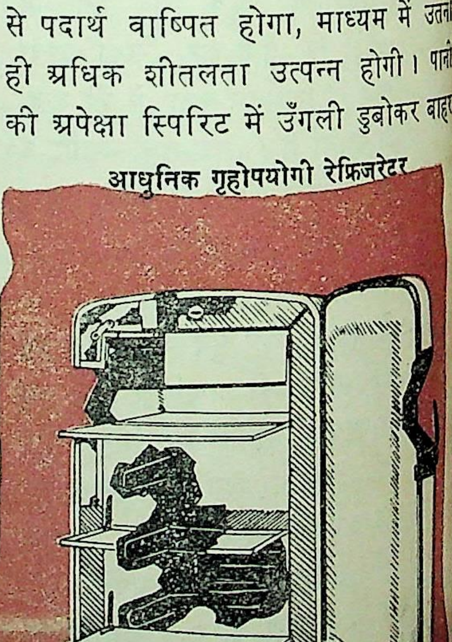

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाल देखने पर अन्तर स्पष्ट हो जाएगा।

इसी सिद्धान्त पर रेफ्रिजरेटर आधारित है। इसमें भी प्रसिद्ध वैज्ञानिक माइकेल फैरेडे ने (१८८३ में) एक नया तथ्य खोज निकाला कि दाब घटाकर एक ही पदार्थ की वाष्पन-गति को आश्चर्यजनक रूप से बढ़ाया जा सकता है। इसकी उलट फैरेडे ने यह पाया कि किसी भी गैस को उस पर दाब बढ़ाते हुए ठण्डा किया जाए तो वह द्रव्य रूप में परिवर्तित हो जाएगी।

अतः रेफ्रिजरेटर में मुख्यतः यही देखना होता है कि किसी द्रव-माध्यम को जिसे रेफ्रिजरेण्ट (refrigerent) कहते हैं, एक बन्द जगह में इस प्रकार रखा जाए कि गैस रूप में परिणत होने के पश्चात् भी द्रव्य उड़ न जाए बल्कि पुनः द्रवित होकर बार-बार काम कर सके। ऐसे माध्यमों में अब तक अमोनिया तथा सल्फर डाइआक्साइड का उपयोग होता था। अब विशिष्ट रासायनिक यौगिक, जिन्हें फ्रिऑन (freon) कहते हैं, इतनी अधिक संख्या में प्राप्य हैं कि उनके पृथक्-पृथक् नाम न देकर F_{12}, F_{14}

कम्प्रेशन प्रणाली का रेफ्रिजरेटर; इसमें गैस रूप में अमोनिया प्रयुक्त होता है

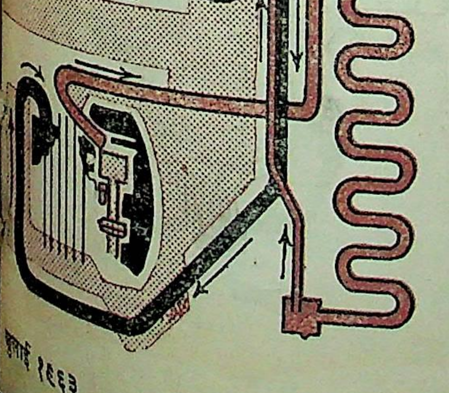

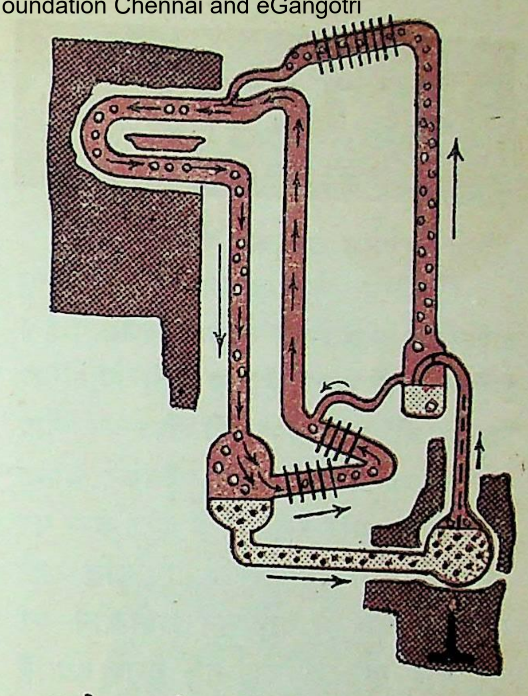

एब्सार्प्शन प्रणाली का रेफ्रिजरेटर। इसमें अमोनिया का जलीय घोल प्रयुक्त होता है

आदि संज्ञाएँ दी गयी हैं। इनमें F_{12}, F_{14} तथा F_{114} अधिक प्रचलित हैं। विशेष परिस्थितियों में पानी से भी कार्य किया जा सकता है। वायुयान में तो वायु का ही उपयोग सुविधाजनक रहता है। वैसे इन माध्यमों में शत-प्रतिशत उपयोगी कोई सिद्ध नहीं हुआ है। किसी में कुछ, किसी में कुछ त्रुटि पायी ही जाती है, अतः इस दिशा में प्रयोग अभी जारी हैं। कुछेक माध्यम प्रशीतन की आश्चर्यजनक सामर्थ्य रखते हैं किन्तु उनका प्रभाव विषैला होने से उन्हें उपयोग में नहीं लाया जा सकता।

रेफ्रिजरेटर कम्प्रेशन विधि का हो अथवा एब्सार्प्शन विधि का, खाद्य संरक्षण में आज अप्रतिम है। इसी के द्वारा संभव है कि हमें सर्दियों में उत्पन्न न होने वाले आम और गर्मियों में अप्राप्य अमरूद, वर्ष में तीन चार महीने न मिलने वाले आलू और केवल २-३ महीने मिलने वाली मटरफली, जब चाहें तब ताजा हालत में मिल सकती हैं। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

हाथी टिफिन बाँधकर चलते हैं !

हिमालय के आँचल में बसे हुए दार्जिलिंग के हाथियों की यह विशेषता है। इन्हें ये छूट रहती है कि अपने खाने का जितना बोझा चाहें अपनी पीठ पर लाद कर ले जाएँ। काम पर पहुँचकर अपना बोझा एक ओर रख देते हैं और काम पर जुट जाते हैं। इनमें एक यह बुद्धि बड़ी विलक्षण है कि ये चाहे जब खाने-पीने पर मुँह नहीं मारते। यहाँ तक देखा गया है कि इनका स्वयं का भोजन पास ही रखा होने पर भी उस ओर नजर तक उठाकर नहीं देखते। खाने के लिए भी महावत की आज्ञा लेते हैं। महावत कहेगा, तभी ये खाना शुरू करेंगे।

ये भी शिष्टाचार हैं

तिब्बत में सम्मान-प्रदर्शन अपनी जीभ दिखाकर किया जाता है। अरब प्रदेश में दावत के प्रसंग पर केवल तीन कप काफी एक साथ पी जाती है और तीसरे कप पर संकेत स्वरूप खाली कप एक ओर कर दिया जाता है अन्यथा परिचारकगण तो खाली कप को देखते ही भरने लगते हैं। भोजन के पश्चात् सुगंधित द्रव का प्याला घुमाया जाता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी दाढ़ी को छुआएगा, ताकि खाद्यकण साफ हो जाएँ और मुख सुगन्धित हो जाए।

सब कुछ एक ही टाँग का !

११वीं शताब्दी में इण्डोचाइना का सम्राट् ली थाई ऐसा ही विचित्र था जिसके यहाँ सभी कुछ एक टाँग का था। एक बार स्वप्न में अपनी इष्टदेवी को एक टाँग की देखकर उसने न केवल अपनी एक टाँ कटवा दी, बल्कि एक ही टाँग की महिला से विवाह करके उसे रानी बनाया। एक ही टाँग के दरबारियों की कैबिनेट बनायी और एक ही टाँग अर्थात् खम्भे पर नया मन्दिर खड़ा कराकर उस देवी को भेंट कर दिया।

खाने से पहले धोना

यह प्रवृत्ति सफाई-पसन्द व्यक्तियों में तो पायी ही जाती है, एक वन्य पशु भी इस सूची में आ जाता है। अमरीका में पाए जाने वाला, भेड़िया-वर्ग का रैकून प्राणी ऐसा ही है। दो फुट के शरीर और दस इंच की पूँछ वाला यह प्राणी अपने शिकार को खाने से पहले भली प्रकार धो लेता है।

नौ मन का आदमी···संसार की सबसे बड़ी वास्कट

ब्रिटेन का डेनियल लेम्बर्ट (१७७०) वृहत् शरीर का अप्रतिम नमूना रहा है। बचपन से ही इसका शरीर बेतरह बढ़ रहा था। जो वास्कट यह पहनता था, वह संसार में सबसे बड़ी थी। इसका वजन लगभग ९ मन था। इसके बैठने की कुर्सी, वास्कट आदि वस्तुएँ आज भी संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ मगर को फाँसते हैं

मलाया देश के मछुए मगर को ऐसी सरलता से फाँसते हैं जैसे काँटे-बंसी से मछली को। किसी भी पर्यटक के लिए मगरों से उफनती हुई वहाँ की नदियाँ शिकार का अच्छा आकर्षण बन सकती हैं। किन्तु वहाँ राज्यादेश द्वारा मगरों की शूटिंग मना है। यह इसलिए कि गोली की घातक चोट खाया हुआ मगर नदी के तले में बैठ जाता है और प्रायः हाथ नहीं आता। इसके विपरीत फाँसे गये मगर की खाल के दाम भी कहीं अधिक उठते हैं।

वहाँ के कुशल शिकारी रातों को बाहर निकलते हैं। वे अपने माथे पर टार्चलाइट बाँध लेते हैं और दो भाले तथा एक रस्से से ही अपना काम कर लेते हैं। एक भाले की मुड़ी हुई नोक में बंसी के काँटे की तरह कोई भी जीव-जन्तु बँधा रखते हैं। बड़ी कुशलता से वे बगैर उसे चोट पहुँचाए, केवल यही करते हैं कि उसका मुँह, उसका थूथन रस्से से कसकर बाँध लेते हैं। तत्पश्चात् बेधड़क उसे घर लाकर उसका अच्छा मूल्य प्राप्त करते हैं।

वनस्पति जगत के ये दानव

केलिफोर्निया (अमरीका) के अति विशालकाय रेडवुड वृक्षों से मिलते-जुलते सिकोया (*sequoia*) के वृक्ष ऐसे वृहत्काय हैं मानो प्रकृति ने बड़ी ही फुर्सत में इन्हें गढ़ा हो। मोटाई और मजबूती में अप्रतिम ये वृक्ष सामान्यतः तो २७५ फुट और कहीं-कहीं ३२० फुट के भी पाये जाते हैं। इनके तने का व्यास कम से कम २० फुट रहता ही है, ३५ फुट तक भी देखा जा सकता है। दो फुट मोटी तो इसके तने की छाल होती है। प्रायः ही इन वृक्षों पर आकाशीय बिजली गिरती है लेकिन थोड़ी-बहुत चोट-चपेट खाकर ये उसे भी सह लेते हैं।

साधारणतया २५०० और विशेषतः ५००० वर्ष तक की प्राप्ति इन वृक्षों में एक-एक वृक्ष इतनी लकड़ी दे सकता है जो ५-५ कमरों वाले १५० मकान बनाने के लिए पर्याप्त होगी।

भविष्यद्रष्टा वानर

यूरोप में अन्तिम पीढ़ी के ये वानर, बारबेरी वानर ही शेष रहे हैं। जंगल-निवासी होते हुए भी ये मनोरंजन तथा

रोमांच का विषय हैं। सबसे बड़ी रोचकता लोगों की इस मान्यता के कारण है कि ज्योंही ये अदृश्य होंगे, त्योंही जिब्राल्टर से ब्रिटिश आधिपत्य उठ जाएगा।

कलियुगी भीम

यूक्रेन के ओडेसा स्थित स्कूल का एक आठ वर्षीय बाल-छात्र वास्तव में कलियुगी भीम है।

बालक का नाम वित्या है जो आठ ही वर्ष का है मगर लगभग पाँच फुट ऊँचा और १५० पौंड वजन का है। केवल शरीर से ही नहीं, काम-काज से भी ऐसा ही विचित्र है जो मुकाबले में किसी भी हट्टे-कट्टे जवान के दाँत खट्टे कर सकता है। ५०० कि. ग्रा. वजन आसानी से उठा लेना और २०० लिटर पानी भरे पीपे को लुढ़का ले जाना इसके लिए सहज हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब चट्टान खिसकती है

भगवानदास गुप्त

चट्टान का खिसकना भी विनाश का एक स्वरूप है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अन्धड़-तूफान, आकाशीय विद्युत, भूकम्प, बाढ़ तथा आग जैसे प्रलयंकर स्वरूपों में पहाड़ी चट्टान का खिसकना भी सम्मिलित है। पूर्वकाल में इसे 'पहाड़ का चलना' कहते थे। आधुनिक विज्ञान ने यद्यपि इनमें से अनेक आपत्तियों का पूर्वज्ञान प्राप्त करने का साधन बना लिया है फिर भी पहाड़ की कौन-सी चट्टान कब, किस ओर खिसक पड़ेगी यह पहले से ज्ञात कर लेना सम्भव नहीं हो पाया है। हाँ, कुछेक ऐसे प्रयोग किये जा रहे हैं जिनके द्वारा इनसे होने वाली हानियों को घटाया जा सके।

जब चट्टान खिसकती है

अमरीका के पहाड़ी विस्तार हों, यूरोप के आल्प्स पर्वतीय क्षेत्र हों अथवा हमारे हिमालय की ही पर्वत-श्रेणियाँ हों, चट्टानों का खिसकना एक सहज, सामान्य बात बन गयी है। आये दिन चट्टान खिसकने के समाचार प्राप्त होते ही रहते हैं। जहाँ पर्वतों की तलहटी में घनी बस्तियाँ आबाद रहती हैं, वहाँ चट्टान का खिसकना अत्यन्त विनाशकारी होता है।

चट्टान के खिसकने के कारण, उस क्षेत्र का भौगोलिक स्वरूप ही नष्ट हो जाता है। पर्वत के स्थान पर खाई-खन्दक, समतल स्थान पर गहरा खड्ड, नदियों के मार्ग अवरुद्ध अथवा परिवर्तित तथा नई झील, नये सरोवरों के निर्माण हो जाते हैं। कहीं पुराने बाँध टूटते हैं, कहीं नये स्वतः बन जाते हैं। बाँध टूटने से जल-प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जाता है। मीलों लम्बा-चौड़ा भूमि क्षेत्र लहराता सागर बन जाता है।

केलिफोर्निया (उत्तरी अमरीका) में २७ मई, १९५८ को लगभग ६०० टन वजन की एक चट्टान ने खिसककर लास एंजिलस को सानफ्रांसिसको से जोड़ने वाले मार्ग को क्षत-विक्षत कर दिया। भीषण गर्जना के साथ लुढ़कती हुई चट्टान को नीचे आने में दो मिनट से भी कम समय लगा था। वह व्यस्त मार्ग निरंतर ही यातायात से चलता रहता है। संयोगवश उन पौने दो मिनट के लिए आगे की ओर ट्राफिक सिगनल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्द होने के कारण पचास से भी अधिक कारें रुकी हुईं थीं उनका वह रुकना ही बचना हो गया अन्यथा भीषण विनाश की कल्पना की जा सकती है ।

दूसरा दृष्टान्त अमरीका के यलोस्टोन पार्क का है जिसमें अनेक पिकनिक पार्टियाँ आनन्दमग्न थीं । अचानक वहाँ एक चट्टान खिसक पड़ी जिसके फलस्वरूप असंख्य जाने गयीं ।

अब तक की ऐसी दुर्घटनाओं में सबसे अधिक विनाशकारी घटना कान्सु (Kansu) की मानी जाती है । १६ दिसम्बर १९२० की सायंकाल को भूकम्प की पूर्व सूचना पाकर उस नगर के निवासी पहले से ही घरों के तहखानों और गुफाओं में जा छिपे थे । रात होते ही प्रकृति ने प्रलय का ताण्डव प्रारम्भ कर दिया । धरती काँपी, दरारें पड़ गयीं, गर्म रेत फुफकार कर धरती के अन्तराल से निकली, पर्वत हिल उठे और ओलावृष्टि की तरह चट्टानें टूट-टूटकर बरसने लगीं । नदियाँ रुक गयीं और वह रुका हुआ पानी जहाँ-तहाँ फूटकर बह निकला तो मार्ग का सभी कुछ बहा ले गया । वह कहानी जब समाप्त हुई तब उसके साथ एक नगरी के महाविनाश का और लगभग दो लाख की जनहानि का कलंक भी जुड़ चुका था ।

चट्टान क्यों खिसकती है ?

पृथ्वी का आकर्षण-बल, सूर्य का प्रखर ताप, पानी की मार और पवन की फटकार मिल-जुलकर चट्टानों पर धावा बोलते ही रहते हैं । दिन में चट्टानों की परतें तप्त होकर फैली अवस्था में रहती हैं । रात का शीत जब ऊपरी परतों को सिकुड़ने पर बाध्य करता है तब तक नीचे की परतें अपेक्षाकृत तप्त और फैली अवस्था में रहती हैं । इन दो असमानताओं की खींचातानी में चट्टान कमजोर हो जाती है । इनके अतिरिक्त चट्टान की दरारों में वर्षा का भरा हुआ पानी जब शीत के कारण जमकर फैलता है तब तो भीतरी परतें और भी चटखने-टूटने लगती हैं । इस प्रकार जर्जर होती जाती चट्टानों को गिराने के लिए कभी-कभी तो तेज हवा का झोंका ही काफी होता है; अन्यथा भूकम्प तथा विस्फोट आदि के धमाके ही प्रायः इन्हें गिराने के लिए उत्तरदायी होते हैं। पहाड़ों को काट-काटकर लम्बे-चौड़े मार्ग तथा रेलवे की सुरंगें और नयी खानें खोदने के लिए डाइनेमाइट जैसे साधनों के उपयोग भी चट्टानों के खिसकने के लिए उत्तरदायी हैं ।

निराशा नहीं, परिश्रम आवश्यक

भू-स्तरों, पर्वतों तथा चट्टानों के सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि चट्टानों का खिसकना केवल दिखता ही आकस्मिक है, अन्यथा यह एक अति मन्द और क्रमबद्ध प्राकृतिक क्रिया है । अतः समय-समय पर ऐसे पहाड़ी ढलानों तथा चट्टानों का निरीक्षण आवश्यक है जिनके निकट से यातायात के मार्ग गुजरते हों अथवा बस्तियाँ आबाद हों । प्रायः ही पहाड़ी सड़कों का जगह-जगह फटना, धरती में दरारें दिखना ऐसे लक्षण हैं जिनसे चट्टानों की स्थिति का बराबर अनुमान लगाया जा सकता है ।

चट्टानों को खिसकने से रोका नहीं जा सकता और न उससे होने वाली हानियों को ही यथासंभव घटाया जा सकता है । इसके लिए निम्न कुछेक प्रयोग किये जा रहे हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

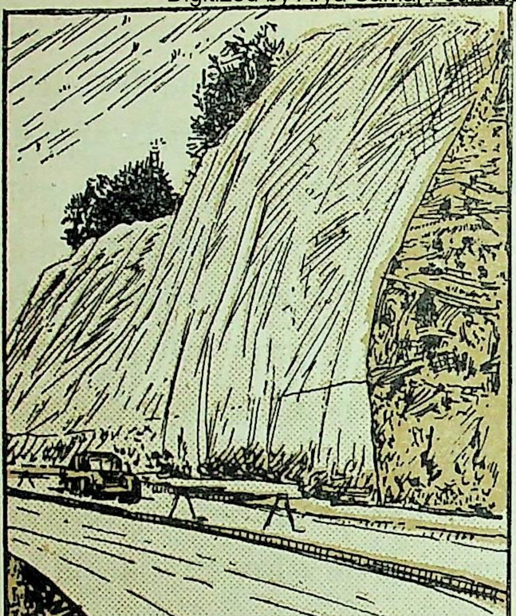

आगे धातु निर्मित मोटी चद्दरों की दीवार-सी खड़ी की गयी है ताकि यदि वह टीला धसक भी पड़े तो नीचे के मुख्य मार्ग में बाधा उपस्थित न हो।

इतना सब होते हुए भी ये पूर्ण सुरक्षा के साधन नहीं कहे जा सकते। जापान तथा अमरीका के इंजीनियरों ने ऐसे कम्पनलेखी बनाये हैं जो अस्थिर चट्टानों की स्थिति का

जाली लगे रहने से चट्टान खिसककर भी सरक कर बगल की खाई में ही गिरती है, सड़क पर नहीं

बराबर ज्ञान कराते रहते हैं। रेल की सुरंग हो, अथवा मोटरमार्ग हो, ऐसे ढलानों के दोनों ओर सिगनल लगे रहेंगे जिन्हें वह कम्पन-लेखी स्वयं संचालित करता रहेगा। ज्यों ही किसी चट्टान के खिसकने की घड़ी निकट आएगी, दोनों ओर के सिगनल यातायात को रोक देंगे।

आशा है, इन प्रयत्नों से तथा अन्यान्य नवीन आविष्कारों की सहायता से चट्टानों के खिसकने के प्रति पर्याप्त सुरक्षा अनुभव की जा सकेगी।

तार की जाली

यह हास्यास्पद तो लगेगा कि तार की जाली से चट्टान को रोका जा सकेगा।

ढीली-ढाली चट्टान को कंक्रीट का ओवरकोट पहना देने से वह जल्दी नहीं गिरती

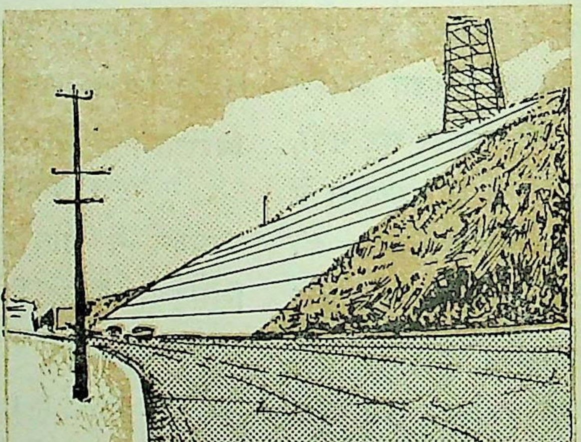

एक इंजीनियर प्रयोग-कर्ता ने इसके लिए चट्टान से सटी हुई ही एक चौड़ी और गहरी खाई भी खोद रखी है। चट्टान जब खिसकेगी तब एकाएक ही मार्ग पर सामने की बजाय मोटे तारों की जाली के सहारे सरकती हुई खाई में जा गिरेगी।

दूसरे प्रयोगस्वरूप एक ऊबड़-खाबड़ ढलान पर कंक्रीट की मोटी तह जमाकर ऐसी स्थिति में की जा सकती है कि वह अस्थिर न रहकर अपने स्थान पर जमी रहे।

एक तीसरे प्रयोग में रेतीले ढलानों के

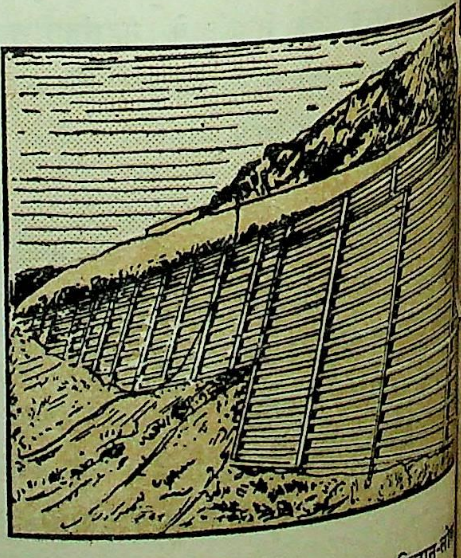

धातु की मोटी चद्दरों द्वारा भी चट्टान को खिसकने के खतरे से बचाया जा सकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !

जुलाई आ रही है। तुममें से अधिकांश नयी कक्षा में आ गये होंगे। **विज्ञान-लोक** तुम्हारे प्रगति पथ पर बढ़ने की कामना करता है। कुछ लोगों के पास असफलता न चाहने पर भी अपने आप आ गयी, परन्तु इसमें निराश होने की कोई बात नहीं। धैर्य से काम लो, अगले वर्ष आशा के दीप जलेंगे।

मुझे बड़ी खुशी है कि तुम्हारे क्लब के सदस्यों की संख्या दिन प्रतिदिन तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। इसमें सभी को स्थान प्राप्त है, सभी का स्वागत है।

छुट्टियों भर खूब खेल-कूद और आराम के क्षणों में मन लगा होगा। तुम सोच रहे होगे जल्दी स्कूल खुलें और तुम नयी खुशियों, नयी आशाओं और नयी उमंगों के साथ चहकते विद्यालय में पहुँचो।

विज्ञान-लोक का नया अंक तुम्हारे पास है। इसकी नवीनता बढ़े, इसमें तुम लोगों के सहयोग की आवश्यकता है। तुम्हारे असंख्य प्रशंसा पत्रों में प्राप्य प्यारी सामग्री ही प्रगति स्तम्भ की सीढ़ी है। **करो और देखो** और **तुम्हारी कलम से** तुम्हारे अपने स्तम्भ हैं। इनका प्रकाशन अब नियमित रूप से हो रहा है जिसे तुम देख ही रहे हो।

इनाम लो के उत्तर कभी-कभी अंग्रेजी में आ जाते हैं। कितना अच्छा हो यदि तुम लोग उत्तर हिन्दी में ही लिखो।

पुरस्कार निर्णय की विधि वही है जो सर्वमान्य है। अर्थात् सर्वशुद्ध अथवा निकटतम शुद्धपूर्ति पर प्रथम और क्रमशः शुद्धपूर्तियों पर द्वितीय तथा तृतीय पुरस्कार। प्रत्येक श्रेणी के पुरस्कार की कुल राशि वही रहती है जो विज्ञप्त की जाती है और वह कुल राशि विजेताओं में बराबर-बराबर वितरित की जाती है।

यह अंक कैसा लगा और क्या-क्या पसंद आया ? अपनी रुचि लिखो। तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में,

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४० के विजेता

प्रथम पुरस्कार

गोपालमाधव (२३७९) मेरठ, कु. चित्रा गुप्ता (३७००) मेरठ, प्रकाश जोशी (६११३) अजमेर।

द्वितीय पुरस्कार

रामनाथ गुप्त (१३१७) दिल्ली, गजेन्द्रपाल सिंह (१६०५) मेरठ, कौशलकिशोर अग्रवाल (६५७३) नेतरहाट।

तृतीय पुरस्कार

गिरीशचन्द्र अग्रवाल (११५७) आगरा, बद्रीप्रसाद जोशी (४२६३) टवलाई, रवीन्द्रकुमार शर्मा (६३५६) लखनऊ, जगदीशप्रसाद गुप्त (६६१६) कानपुर, विद्योतमकुमार चोपड़ा (७२०९) जोधपुर, धर्मीचन्द जैन (७२३३) पीसांगन, पुरुषोत्तमकुमार सूरी (७३४१) जगदलपुर, सुधीर राव (७५००) इन्दौर, नरेन्द्र बंसल (७८२८) आगरा, मंजु अग्रवाल (८१७९) इलाहाबाद, माया देवी (८६०४) कानपुर।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ४२

सदस्य संख्या..........................

नाम ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब के नये सदस्य

कौशलेन्द्रप्रसाद
(स. सं. ५८५)

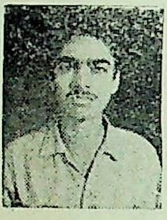

अलखनिरंजन
(स. सं. १८३६)

रवीन्द्रकुमार
(स. सं. ३८४७)

श्यामसुन्दर
(स. सं. ३६०६)

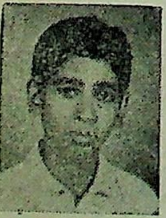

ब्रजेश्वरप्रसाद
(स. सं. ३६७२)

६४४२ भूपेन्द्र सिंह (१६) अलवर, ४३ टीकमदास (१६) पीलीभीत, ४४ अशोक कुमार (१३) सुल्तानपुर, ४५ स्वतन्त्र कुमार (१३) सुल्तानपुर, ४६ गोपाल प्रसाद (१६) मुजफ्फरपुर, ४७ आनन्द किशोर (१७) सुपौल, ४८ विनोद (१७) अलीगढ़, ४६ ओमप्रकाश (१८) बिजनौर, ५० सुरेशचन्द्र (१६) बिजनौर, ५१ अंजनीकुमार (११) भागलपुर, ५२ कु. आशा श्रीवास्तवा (१२) आगरा, ५३ रणजीतसिंह (१४) संगरिया, ५४ लाजपतराय (१२) वाराणसी, ५५ तिलकचन्द (१५) दिल्ली, ५६ अशोककुमार (१३) झंझारपुर, ५७ परमजीतसिंह (१३) आगरा, ५८ श्यामसुन्दर (१४) संगरिया, ५६ नारायण (१७) अजमेर, ६० सुरेन्द्रप्रकाश (८) किशनगढ़, ६१ रामाश्रय (१०) नैनी, ६२ अनिल (१२) छपरा, ६३ अजयप्रकाश (१६) लखनऊ, ६४ जुगलकिशोर (२०) लखनऊ, ६५ प्रबोधचन्द्र (१७) मेरठ, ६६ हरीशचन्द्र (१६) पिथौरागढ़, ६७ विनयकुमार (१५) गोरखपुर, ६८ लालता प्रसाद (१५) आगरा, ६६ कैलाशचन्द्र (१७) इन्दौर, ७० कु. उषा गुप्ता (१५) लुधियाना, ७१ धीरेन्द्रकुमार (१५) उदयपुर, ७२ अरुणकुमार (१४) चण्डीगढ़, ७३ रामचन्द्र (१६) सींथल, ७४ शान्तिलाल (१६) उदयपुर, ७५ शिवनाथ (१७) रामनगर, ७६ सन्तोषकुमार (१५) भोपाल, ७७ चन्द्रप्रकाश (१८) फर्रुखाबाद, ७८ श्रीकान्त (१६) इलाहाबाद, ७६ अरुणकुमार (१६) इलाहाबाद, ८० कु. बीनू (१५) फतेहगढ़, ८१ बीरेशकुमार (१४) पटना, ८२ प्रमोदकुमार (१२) पटना, ८३ रवीन्द्रकुमार (१६) शिकोहाबाद, ८४ वीरेन्द्रकुमार (१६) भोपाल, ८५ जीतपालसिंह (१४) गोंडा, ८६ सुशील (१४) सुल्तानपुर, ८७ शंकरसिंह (१८) धार, ८८ अनिलकुमार (१२) फतेहगंज, ८७ कु. शोभा (१५) कटनी, ६० ओमप्रकाश (१२) कटनी, ६१ गोविन्दनारायण (१२) सहारनपुर, ६२ गणपतलाल (१५) दवेर, ६३ सुरेन्द्रकुमार (१२) अजमेर, ६४ हरिहर प्रसाद (११) कटरासगढ़, ६५ सुशीलकुमार (१४) सतना, ६६ अमिताभकुमार (१४) सुपौल, ६७ कु. वीनारानी (५) इलाहाबाद, ६८ शिवशंकर (१३) मुजफ्फरपुर, ६६ हरसुखलाल (१६) रायपुर ६५०० प्रभातकुमार (१२) लखनऊ, १ कु. इरा (१२) सहरसा, २ गोबिन्द (१६) दरियापुर, ३ सन्तोषकुमार (१०) गोरखपुर ४ छगनलाल (१६) कलकत्ता, ५ विनोदकुमार (१५) विसौली, ६ सतीशकुमार (१६) जोधपुर, ७ सुशील (१२) रांची, ब्रजेशकुमार (१४) महुई, ६ जगदीशनारायण (१६) मधेपुर, १० सतीशकुमार (१५) नौतनवां, ११ गोविन्ददास (१८) भोपाल, १२ मिथिलेशकुमार (१५) दरभंगा, १३ राजेन्द्रप्रसाद (१५) वाराणसी, १४ विनोदकुमार (११) महुई, १५ विनोदकुमार (१४) कलकत्ता, १६ जीवनलाल (१७) कदमा, १७ नारायण (१५) आदीपुर, १८ जितेन्द्रकुमार (१४) इन्दौर, १६ वी० वेंकटराव (१३) कलकत्ता, २० चैनसुख (१७) फलोदी, २१ सुभाषकुमार (१५) देहरादून, २२ अभयकुमार (१२) राजनन्दगाँव, २३ जवाहरलाल (१५) राँची, २४ नरेन्द्रकुमार (१८) नगीना, २५ नरेन्द्रसिंह (१५) अल्मोड़ा, २६ श्यामराव (१६) रायपुर, २८ कैलाशचन्द्र (१६) आलिराजपुर, २६ मिश्रीलाल (१७) चिचोली, ३० अशोककुमार (१३) भोपाल, ३१ प्रेमबाबू (१३) आजमगढ़, ३२ मोहनलाल (१७) जयपुर,

सुरेश
(स. सं. ४६१…)

विद्यापति
(स. सं. ५६३…)

दीनदयाल
(स. सं. ६२३…)

देवाशीष
(स. सं. ६२५…)

सजनकुमार
(स. सं. ७११…)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमोदकुमार
(स. सं. ७१२४)

शिवप्रसाद
(स. सं. ७२७६)

...मणप्रसाद
(स. सं. ७३४९)

...चन्द्र
(स. सं. ७५९६)

...कुमार
(स. सं. ७७५३)

३३ साहबप्रसाद (११) आगरा, ३४ कैलाशचन्द (१३) पिपरिया, ३५ शम्भूदयाल (१४) पिपरिया, ३६ खलील अहमद (१९) गड़वारा, ३७ अखिल चोपड़ा (१३) नयी दिल्ली, ३८ बेचन (११) नेतरहाट, ३९ रमेशशंकर (१४) पटना, ४० प्रेमसिंह (१७) पूरनपुर, ४१ राजेन्द्रकुमार (१७) पीलीभीत, ४२ बाबूसिंह (१७) पीलीभीत, ४३ वेदप्रकाश (१५) पीलीभीत, ४४ हरेन्द्रकुमार (१४) पीलीभीत, ४५ विनोदकुमार (१६) पीलीभीत, ४६ प्रेमकुमार (१५) चूरू, ४७ राजकुमार (१७) रायपुर, ४८ राकेशकुमार (१२) लश्कर, ४९ कु. मंजुला (९) लश्कर, ५० अनिलकुमार (११) चित्तौड़गढ़, ५१ रामदास (१७) आजमगढ़, ५२ काशीनाथ (१७) मुरारपुर, ५३ रवीन्द्रनाथ (१३) सिहुका, ५४ भानुप्रताप (१३) सिहुका, ५५ बालमुकन्द (११) नेतरहाट, ५६ विजेन्द्रनाथ (१२) ग्वालियर, ५७ कुलभूषण (१६) लुधियाना, ५८ मिथलेशकुमार (१०) पटना, ५९ नाथूलाल (२०) सिंगोली, ६० बृजमोहन (१७) बकानी, ६१ राजकुमार (१३) खेलारी, ६२ शिवचरण (११) सिहोर, ६३ उमानाथ (१३) पटना, ६४ नारायणलाल (१४) जयपुर, ६५ रमेशलाल (१४) महादेव स्थान, ६६ मनहर पारिख (१६) पूना, ६७ भगवानदास (१३) सींथल, ६८ लक्ष्मणसिंह (१४) आसीन्द, ६९ एम. प्रसादराव (१६) आद्रा, ७० रामगोपाल (१८) करौरा, ७१ नचिकेता (१०) वाराणसी, ७२ सरोजकुमार (१३) गोलमुरी, ७३ कौशलकिशोर (१२) नेतरहाट, ७४ भंवरलाल, (१८) आसीन्द, ७५ गौतमप्रकाश (१३) पटना, ७६ कु. शुभा (११) पटना, ७७ कु. मृदुला (१२) डीडवाना, ७८ जगतनारायण (१६) बम्बई, ७९ विजयकुमार (१०) बम्बई, ८० देवेन्द्रप्रसाद (१४) सहरसा, ८१ महावीरप्रसाद (१६) श्रीगंगानगर, ८२ योगेन्द्रकुमार (१६) बम्बई, ८३ कु. रागिनी (११) चान्दचौरा, ८४ सतीशचन्द्र (१५) फिरोजाबाद, ८५ सतीशकुमार (१२) बम्बई, ८६ अरविन्दकुमार (१५) झाँसी, ८७ वसंतराव (१७) रायपुर, ८८ कृष्णनारायण (१७) लश्कर, ८९ रामचरन (१७) लश्कर, ९० हर्षदकुमार (१२) बम्बई, ९१ लाखनसिंह (१५) अम्बाह, ९२ द्वारकाप्रसाद (१४) बम्बई, ९३ कु. दयारानी (८) लखनऊ, ९४ स्वतंत्रकुमार (१२) सुल्तानपुर, ९५ अरुणकुमार (१२) सीकर, ९६ चन्द्रभूषण (१६) तेइवारा, ९७ रमेशचन्द्र (१३) शमसाबाद, ९८ कामतानाथ (१४) सतना, ९९ रतनचन्द्र (१८) इटारसी, ६६०० कु. स्वर्णेन्दु (१५) बिहपुर, १ रंजन (१७) रुड़की, २ रमेशचन्द्र (१८) राजगढ़, ३ अनिलकुमार (१२) कानपुर, ४ विजयशंकर (१८) वाराणसी, ५ त्रिलोकसिंह (१५) आद्रा, ६ कान्तिकुमार (१५) खुरई, ७ कुमारी विमला (१३) लाडनूं, ८ कुमारी पूसबा (१०) लाडनूं, ९ रवीन्द्रप्रकाश (१६) मन्दसौर, १० गुरुदास (१६) बीकानेर, ११ लक्ष्मीनारायण (११) लश्कर, १२ विनोदकुमार (१३) सारंगपुर, १३ पी. सूर्याराव (१४) आद्रा, १४ अनूपकुमार (१०) लश्कर, १५ जनरंजन (१३) नागपुर, १६ जगदीशप्रकाश (१४) कानपुर, १७ जगदीशचन्द्र (१६) बीकानेर, १८ महेन्द्रप्रताप (१६) सींथल, १९ सुरेशप्रकाश (१४) किशनगढ़, २० टेकचन्द (१६) भाटपारा, २१ रमेश कमरानी (१६) भोपाल, २२ श्रीराम (१६) इटारसी, २३ राजेन्द्रप्रसाद (१७) सिंहनान, २४ विद्याप्रकाश (१८) थानेसर २५ सुमेरचन्द्र (१५) थानेसर, २६ अमृतलाल (१४) रायपुर, २७ खुशपाल (१४) कानपुर, २८ प्रेमचन्द (२२) मंझेड़ा शुकरू।

मोतीलाल
(स. सं. ७९२९)

पुरुषोत्तमदास
(स. सं. ८२२८)

ललितकुमार
(स. सं. ८२५४)

कृष्णदेव
(स. सं. ८३७७)

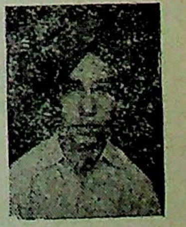
जगजीतसिंह
(स. सं. ८४२१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनाम लो

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ जुलाई

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५५ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४२ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ जुलाई तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४२ के प्रश्न

१. चाँदनी रात में प्रकाश होते हुए भी विभिन्न रंग स्पष्टतः क्यों नहीं दिखते ?

२. लारेन्सियम (Lawrencium) क्या है, इससे सम्बन्धित व्यक्ति का नाम क्या है ?

३. प्रायः पानी उबालने वाले बर्तनों के अन्दर की ओर सफेद धारियाँ (scales) क्यों जम जाती हैं ?

४. ल्यूटाइन-बेल (Lutine Bell) क्या है ?

५. तीव्र वेग से घूमती हुई वस्तु का गतिमान अवस्था में ही सूक्ष्म निरीक्षण किस यन्त्र के द्वारा किया जा सकता है ?

६. B. T. U. की व्याख्या कीजिए।

७. प्राणि-विज्ञान का पिता किसे कहा जाता है ? उनका जीवनकाल किन वर्षों में रहा है ?

८. सामान्य टिड्डी (Grasshopper) के पिछले पाँवों में जो एक अतिरिक्त अंग और होता है, वह किस काम आता है ?

९. धनावेशित (positive) एलेक्ट्रान को क्या कहते हैं ? इसकी खोज किसने की ?

१०. खलासियों की पैण्ट के पांयचे ढीले और चौड़े क्यों रखे जाते हैं ?

प्रतियोगिता संख्या ४० के प्रश्नों के उत्तर

१. इंगलेण्ड से अमरीका तक वायरलेस संवाद १२ दिसम्बर १९०१ को भेजा गया था।

२. रसायन में इसे ट्राइप्लम्बिक टेट्राक्साइड (triplumbic tetraoxide) कहते हैं। इसका व्यावसायिक नाम रेड लेड (red lead) है। इसका उपयोग मुख्यतः पाइपलाइन जोड़ने में तथा फ्लिंट शीशा (flint glass) बनाने में होता है।

३. इस्पात की गेंद की उछाल और वेग रबर की अपेक्षा कहीं अधिक होगा, क्योंकि इसकी स्थितिस्थापकता अप्रतिम है। अतः इसकी दबी हुई सतह बहुत शीघ्र मूल अवस्था में आ जाती है।

४. सूर्य द्वारा विकीरित पराबैंगनी रश्मियाँ पृथ्वी तक आते-आते पर्याप्त मात्रा में वायुमण्डल द्वारा शोषित हो जाती हैं जबकि ऊँचे पर्वत-शिखरों पर ये काफी शक्तिशाली रहती हैं। इनकी चमक से आँखें खराब हो जाती हैं। यही हिमान्धता है। अतः पर्वतारोहियों के लिए उचित चश्मे (goggles) के अभाव में ये रश्मियाँ बड़ा संकट उत्पन्न कर देती हैं। कभी-कभी तो प्राणसंकट तक उपस्थित हो जाता है।

५. दक्षिण तथा मध्य अमरीका में पाये जाने वाले इन तोतों को मैकॉ (macaw) कहते हैं।

६. सर्वप्रथम चार उपग्रह ज्ञात किये जा सके थे। नाम हैं—इयो (Io), यूरोपा (Europa), गेनिमीड (Ganymede) तथा कैलिस्टो (Callisto)।

७. अन्तरिक्ष-यान के लिए एक नवाविष्कृत इंजन का नाम है। यह इंजन एक कोष में उत्पन्न आयनीकृत नत्रति परमाणु को एक पतली टोंटी से दबाकर इतनी तीव्र गति से निकालता है कि प्रवेगिक दबाव उत्पन्न हो जाता है।

८. सन् १६६२ में क्रिस्टोफर रेन तथा राबर्ट बायल के सहयोग से स्थापित।

९. मिस्र देश की नील नदी पर, आस्वान में संसार का विशालतम बाँध बनकर तैयार होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

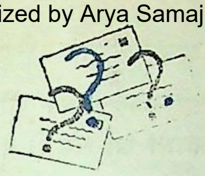

अमरनाथ अग्रवाल (८६१६) सीतापुर

प्रश्न—सेक्रीन जैसी चीनी से भी सौगुना अधिक मीठी वस्तु के लिए किसका आभार मानें।

उत्तर—सौ गुनी नहीं, ५०० गुनी ! रेमसेन और फाल्वर्ग नामक दोनों रसायनज्ञों का आभार माना जाएगा। सल्फोनिक अम्लों के आक्सीकरण के प्रयोग करते-करते एक दिन उन्होंने देखा कि खाने-पीने की जिस चीज से उनका हाथ छुआ, वही बेहद मीठी हो गयी ! वहीं उन्हें सेक्रीन का सूत्र हाथ लगा था।

बृजमोहन खरे (१७२३) सागर

प्रश्न—चोट लगने पर तुरन्त इतनी पीड़ा का अनुभव नहीं होता जितना कि बाद में। ऐसा क्यों ?

उत्तर—सामान्य चोटों में यह बात नहीं। बड़ी चोट में कुछ देर के लिए तंत्रिका-संस्थान सुन्न पड़ जाता है जिसके कारण पीड़ा का विशेष अनुभव नहीं होता। ज्ञानतन्तु पुनः सक्रिय होने पर पीड़ा का अनुभव होता है।

...सकुमार (३६२२) ब्यावर

प्रश्न—जानवरों को भी दाँत के डाक्टर की जरूरत पड़ती है क्या ?

उत्तर—जी हाँ !

महेशचन्द्र (२१४८) गुरुकुल काँगड़ी

प्रश्न—पेण्टोग्राफ किस काम आता है।

उत्तर—प्लान, नक्शे आदि की छोटी या बड़ी प्रतिलिपि बनाने के काम आता है। सीधी-सादी चार पट्टियों को विशेष आकृति (सीधे पर उलटा अंग्रेजी की XX) में इस प्रकार जोड़ा जाता है कि जोड़ों पर वे घूम सकें।

...कृष्ण (५००६) गंगापुर

प्रश्न—गरम कपड़ों में रखी हुई फिनाइल की गोलियाँ घुलती तो दिखती नहीं, अदृश्य कैसे हो जाती हैं ?

उत्तर—ऊर्ध्वपातन (sublimation) के कारण।

रवीन्द्रनारायण (६५७१) सिहोर

प्रश्न—डामर (कोलतार) किस अवस्था में, कहाँ पाया जाता है ?

उत्तर—ट्रिनिडाड (अमरीका) के दक्षिण-पश्चिमीय विस्तार में पिच-लेक (Pitch Lake) से यह 'एस्फाल्ट' के नाम से प्राप्त होता है। युग-युगों से भूमिगत द्रव-पेट्रोल तथा हाइड्रोकार्बन (कार्बन हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन तथा गन्धक) के मन्द आक्सीकरण के फलस्वरूप यह बनता रहता है। इसके उपयोगों की शृंखला बहुत लम्बी है।

अजयप्रतापसिंह (९०७८) इलाहाबाद

प्रश्न—क्या यह सत्य है कि नीम व बबूल की दातून से दाँतों का पायरिया, खून गिरना तथा हिलना आदि बन्द हो जाता है ?

उत्तर—नीम प्रबल कीटाणुनाशक है और बबूल दाँतों को मजबूत करता है। सावधानीपूर्वक नित्य नियम से दातुन की जाए तो ये रोग होंगे ही नहीं। रोग हो जाने पर दातुन से तो उलटे दाँतों की जड़ें कमजोर हो सकती हैं। अतः सत-नीम, सत-बबूल तथा अन्य ओषधियोंयुक्त उत्तम मंजन, फिटकरी के कुल्ले तथा पोटाश परमेंगनेट (लाल दवा) के प्रयोग से अवश्य लाभ होगा।

सरस्वती दयासिंह (७१७३) गोरखपुर

प्रश्न—पौधे केवल मिट्टी से ही पोषण प्राप्त करते हैं, व्याख्या कीजिए।

उत्तर—ब्रुसेल्स (जर्मनी) के वान हेल्मण्ट (Van Helmont) ने इस भ्रम को मिटाया था। अपने प्रयोगों के अन्तर्गत उसने एक गमले में मिट्टी की तौली हुई मात्रा ली और उसमें एक नवांकुरित पौधा तौलकर जमा दिया। रोजाना सींचते-सींचते जब वह पौधा पुष्ट और विकसित हो गया तब उस मिट्टी का पानी सुखाकर पुनः तौला तो मिट्टी के भार में नगण्य तथा पौधे के भार में उल्लेखनीय वृद्धि पायी गयी।

अनवर आलम (६६८४) गोरखपुर

प्रश्न—शुक्रग्रह से आती हुई रेडियो-तरंगों का पता सबसे पहले किसने लगाया ?

उत्तर—ओहायो (Ohio) विश्वविद्यालय के क्राउस महाशय ने, १९५६ में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिश्चन्द्र (६६७०) सहारनपुर

प्रश्न—फ्लॉजिस्टन सिद्धान्त (Phlogiston Theory) क्या है ? इसका प्रतिवाद किसके द्वारा, किस प्रकार हुआ ?

उत्तर—बेकर (J. J. Becher) तथा स्टाल (G. E. Stahl) ने प्रारम्भ में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि जलने की क्रिया में प्रत्येक वस्तु अपने माध्यम को अथवा वायुमण्डल को कुछ न कुछ देती अवश्य है, अर्थात् कुछ खोती ही है। उस 'कुछ न कुछ' का उस समय काल्पनिक नाम फ्लॉजिस्टन ही रख दिया गया। बाद में लिवाशिये (Lavoisier) ने पारे पर अपने प्रयोग से सिद्ध किया कि आक्सीकरण की क्रिया में पारे ने आक्सीजन प्राप्त करके कुछ खोने के बजाय पाया ही है, क्योंकि जलने के फलस्वरूप उसके भार में वृद्धि पायी गयी। तभी उस पूर्व के सिद्धान्त का खण्डन हो गया।

नारायणदास अग्रवाल (५६४४) रायगढ़

प्रश्न—एपोलोनियस कौन था और किस लिए प्रसिद्ध था ?

उत्तर—यूक्लीड और आर्कमिडीज के स्तर का महान् गणितज्ञ, ईसा से २५० वर्ष पूर्व एपोलोनियस रेखागणित का प्रणेता था। इसी ने रेखागणित का साध्य ५२ प्रतिपादित किया था।

प्रमोदकुमार (८५०६) उत्तर काशी

प्रश्न—पक्षाभ (Cirrus) शब्द से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—भाँति-भाँति के मेघ समूहों में से एक का यह नाम है। पृथ्वी की सतह से ऊपर १८ हजार से ४० हजार फुट तक इनका विचरण-क्षेत्र रहता है।

ए. के. सूर (६७०६) रायपुर

प्रश्न—अम्बरग्रिस क्या है, कहाँ पायी जाती है ?

उत्तर—मन्द सुगन्धयुक्त मोम जैसा पदार्थ है जो अधिकतर स्पर्मव्हेल के शरीर में पाया जाता है। यह भी माना जाता है कि यह स्क्वीड के कण्ठ-भाग में होता है और वह स्पर्मव्हेल का प्रिय आहार है। इत्र के उद्योग में यह विशेषतः काम आता है।

श्रवणकुमार (१३००) दिल्ली

प्रश्न—एक औसत चिड़िया वर्ष भर में कितना अनाज खा सकती है ?

उत्तर—लगभग ३ किलोग्राम।

प्रदीपचन्द्र (६८६८) महासमुन्द

प्रश्न—टेरीलीन क्या है ? क्या इसका प्रयो[ग] शरीर के लिए हानिकारक है ?

उत्तर—यूरोप में सर्वप्रथम १६४१ में [इ]से प्राप्त किया गया। मेथिल टरीथेलेट (Methy[l] Terephthalate) तथा एथिलीन ग्लाइको[ल] (Ethylene Glycol) से इसके तार बनाये जा[ते] हैं। अमरीका में इसीको डेक्रान कहते हैं। शरी[र] के लिए यह हानिकारक इस अर्थ में है कि इ[ससे] त्वचा का वाष्पन रुक जाता है और यह नाइलॉन से भी अधिक और त्वरित ज्वलनशील है। अ[तः] इसे पहने हुए आग से दूर रहना चाहिए। इसके तारों का गलनांक २४५°C है।

त्रिलोकीनाथ पाण्डे (७३७१) पयागपुर

प्रश्न—हर्टिजियन तरंगें (Hertizian waves) क्या हैं ?

उत्तर—हर्टिजन ने पुरोगामी वैज्ञानिक मैक्स[]वेल के इस सिद्धान्त का अपने प्रयोगों द्वारा १८[] में समर्थन किया था कि विद्युत चुम्बकीय तरंगों [की] गति प्रकाश की गति के लगभग ही है। यह सिद्धान्त रेडियो-विज्ञान में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसी से मारकोनी तथा अन्य वैज्ञानिकों ने ला[भ] उठाया है।

रवीन्द्रनाथ वर्मा (६६८५) वाराणसी

प्रश्न—रेडियम सबसे अधिक कहाँ और किस वस्तु से प्राप्त की जाती है ?

उत्तर—अधिकतर अमरीका की केरनोटाइट तथा आटोनाइट खानों से निकलते पिचब्लेंड (यूरेनियम का एक आक्साइड) नामक खनिज पदार्थ से प्राप्त की जाती है। लगभग ६ टन पिचब्लेंड से केवल १ ग्राम रेडियम प्राप्त हो सकती है।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी की तुला बनाइए

रवि लाटू

आवश्यक सामग्री—समकोण पर मुड़ी शीशे की एक नली, टीन का डब्बा, रबर की चादर का एक टुकड़ा, थोड़ा-सा पानी, एक ग्राम का बाँट तथा एक कार्क।

बनाने की विधि—सर्वप्रथम टीन के डब्बे में एक छेद करके उसमें कार्क लगायें। कार्क में चित्रानुसार समकोण पर मुड़ी हुई शीशे की नली लगाकर जोड़ पर लाख आदि कोई ऐसा पदार्थ लगा दें जिससे वह स्थान वायु-रुद्ध हो जाए। नली लगाने के उपरांत डब्बे का पौन भाग पानी से भर दें। अब डब्बे के मुँह पर रबर की चादर का टुकड़ा इस तरह मजबूती से बाँधें कि हवा एक ओर से दूसरी ओर आने-जाने न पाये। साथ ही स्थिरावस्था में नली में पानी की ऊँचाई को चिह्नित कर दें। बस, आपकी तुला तैयार है। अब इसको चिह्नित करना शेष है।

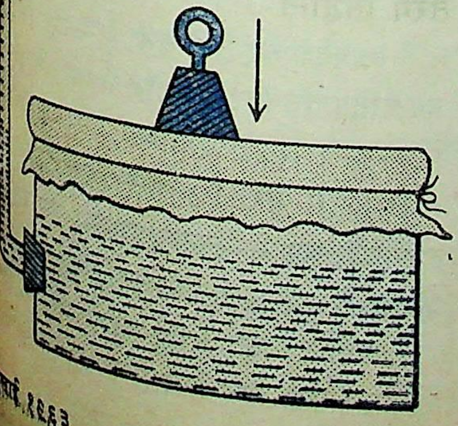

चिह्नित करने के लिए रबर की चादर पर १ ग्राम का बाँट रखते हैं जिससे वह कुछ दबती है। इससे डब्बे की हवा पर दबाव पड़ता है और हवा पानी पर दबाव डालकर उसे नली में कुछ ऊँचाई तक चढ़ा देती है। नली में पानी की सतह स्थिर हो जाने के बाद उस ऊँचाई को पुनः चिह्नित कर लेते हैं। भार हटा लेने पर पानी की सतह गिरकर अपनी पूर्व स्थिति पर आ जाती है। दोनों चिह्नों के बीच के भाग को दस बराबर भागों में बाँट दिया जाता है। इस तरह रबर के लोच की सीमा देखकर उस पर क्रमशः भारी बाँट रखे जा सकते हैं और नली पर बड़ा स्केल भी बनाया जा सकता है।

भार ज्ञात करना—इस तुला के द्वारा जिस वस्तु का भार निकालना हो उसे रबर की चादर के ऊपर रख देते हैं और नली में पानी की सतह का निरीक्षण करते हैं। मान लीजिए नली में सतह छः चिह्न ऊपर उठी तो उस वस्तु का भार ६ मिलीग्राम हुआ। इस प्रकार इस तुला से हलकी वस्तुओं का भार बड़ी सुगमता से ज्ञात हो जाता है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश का रूप

आश्वन बो. राम (स. सं. ३४५७)

यह कौन नहीं जानता कि प्रकाश जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है ? केवल कुछ जीवाणु उसके अपवाद हैं। प्रकाश में उपस्थित अल्ट्रावायलेट किरणों के कारण ही पेड़ पौधों में प्रकाश संश्लेषण संभव होता है। विटामिन डी के निर्माण में भी यह सहायक है। कुछ रासायनिक क्रियाएँ प्रकाश की अनुपस्थिति में असंभव हैं। वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में अनेक सफल अनुसन्धान किये हैं।

प्रकाश के रूप की व्याख्या में दो सिद्धांत मुख्य हैं। कणिका निःसरण सिद्धान्त (Corpuscular theory) और तरंग सिद्धान्त (Wave theory)।

कणिका निःसरण सिद्धान्त

सर आइजक न्यूटन इस सिद्धान्त के प्रवर्तक थे। उनके मतानुसार प्रदीप्त वस्तुएँ छोटे-छोटे अदृश्य कण चारों ओर विकीरित करती हैं। जब इन कणों का आघात हमारी आँख के दृश्य पर होता है तब हम प्रकाश का अनुभव करते हैं। इन कणिकाओं का मार्ग समांगी माध्यम में सरलरेखीय होता है। जब ये कणिकाएँ अपने माध्यम को बदलती हैं तब इनकी गति में परिवर्तन आ जाता है। ये कणिकाएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। फलतः प्रकाश के विभिन्न रंगों का बोध होता है। कणिकाओं के इन्हीं गुणों के आधार पर न्यूटन ने आवर्तन और परावर्तन को समझाया है। न्यूटन ने अपनी खोजों के आधार पर यह भी सिद्ध किया कि सघन माध्यम में प्रकाश का वेग विरल माध्यम की अपेक्षा अधिक होना चाहिए, परन्तु एक अन्य वैज्ञानिक फोकू ने प्रकाश के वेग की तुलना पानी में प्रकाश के वेग से की तो ठीक उसका उलटा परिणाम निकला।

तरंग सिद्धान्त

'प्रकाश तरंगों से बना है'—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हाइगेन और फ्रेसनल ने १६ में किया। सारा ब्रह्माण्ड एक काल्पनिक माध्यम से भरा है जिसे ईथर कहते हैं। तरंगों के रूप में प्रकाश इस माध्यम में गति करता है। वस्तु स्थिति इस प्रकार है।

प्रदीप्त वस्तु अपने चारों ओर के ईथर में तरंगे पैदा कर देती है। कम्पन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक शक्ति, ईथर के एक कण से दूसरे कण तक जाती है। इसे ईथर में प्रकाश तरंगों की गति कहा जाता है। ये तरंगे अनुप्रस्थ होती हैं। जब इन तरंगों का समूह हमारे दृश्य-पटल तक पहुँचता है तब प्रकाश का आभास होता है। इनका तरंग-दैर्ध्य इतना छोटा होता है कि एक सरल रेखा-सा दिखता है।

इन दोनों सिद्धान्तों में काफी मतभेद है। प्रकाश के कुछ आचरण तो 'कण' मान कर समझाये जा सकते हैं और कुछ 'तरंग' मानकर। दोनो ही सिद्धान्तों के पक्ष में काफी प्रमाण भी हैं।

कणिका सिद्धान्त के प्रमाण

(१) **प्रमात्रा सिद्धान्त** (Quantam Theory)–जब ठोस पदार्थों को तपोज्ज्वल करते हैं तो वे क्रमशः लाल, नारंगी, पीली और फिर सफेद चमक पैदा करते हैं। यह समझने में बड़ी कठिनाई उपस्थित हो रही थी कि विकीरित शक्ति का परिमाण (तरंग-दैर्ध्य) ताप के साथ कैसे घटता-बढ़ता है। गर्म करने पर ठोस पदार्थ सीधे ही सफेद या पीली चमक न देकर लाल ही क्यों देते हैं? यदि इसकी व्याख्या प्रकाश को तरंग मानकर करें तो कोई फल नहीं निकलेगा। अतः यहाँ पर प्रकाश को कण मानकर ही इसकी व्याख्या हो सकती है। यह सिद्धान्त सन् १९०० में मैक्स प्लैंक ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने ऊर्जा को लगातार निकलती न मानकर पैकटों के रूप में माना जिन्हें प्रमात्रा (quanta) कहते हैं। उन्होंने गणित की सहायता से एक समीकरण भी प्रस्तुत किया। यह प्रमात्रा स्वयं में एक निश्चित परिमाण रखती है।

(२) **आइन्स्टीन का प्रकाश वैद्युत नियम**—इस नियम की व्याख्या आइन्स्टीन ने १९०५ में की। जब प्रकाश को किसी धातु पट्टिका पर पड़ने देते हैं तब वह पट्टिका विद्युतअणुओं की झड़ी बिखेरती है। इस विषय की व्याख्या सामान्य तरंग सिद्धान्त से नहीं की जा सकती। अतः आइन्स्टीन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रकाश शक्ति की अविरल धारा नहीं है, अपितु उसका निर्माण अलग-अलग कणों से होता है। इसे इन्होंने 'फोटान' (जो वास्तव में प्रकाश-कण हैं) का नाम दिया। विभिन्न रंगों के प्रकाश के 'फोटान' भी भिन्न-भिन्न होते हैं। वास्तव में ये दोनों ही प्रमाण कणिका सिद्धान्त के सबल प्रमाण हैं।

तरंग सिद्धान्त का प्रमाण

क्लार्क मैक्सवेल का विद्युत चुम्बकीय सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि प्रकाश किरणें विद्युत चुम्बकीय तरंगे हैं जो ईथर में गमन करती हैं। रेडियो तरंगे, एक्स-किरणें, अल्ट्रावायलेट किरणें तथा इन्फ्रारेड रश्मियाँ आदि इसके उदाहरण हैं।

आधुनिक रूप

प्रकाश तरंगे इस बात को सुस्पष्ट करती हैं कि प्रकाश कणों से बना है, जो तरंगों जैसा व्यवहार करता है। द' ब्रगली, श्रेदिमर, डेविसन और गारमर नामक वैज्ञानिकों ने भी इस बात को निश्चित रूप से सिद्ध किया है। अतः कहा जा सकता है कि प्रकाश तरंगों और कणों दोनों से बना है। ●

प्लास्टिक की नाव

मास्को में प्लास्टिक की पहली मोटरबोट बनायी गयी है। ६५ व्यक्तियों को पार ले जाने वाली यह नाव काफी हलकी है। अतः छिछले पानी में भी इसे कठिनता न रहेगी। मजबूती का भी इसमें ध्यान रखा गया है। हलकी होने पर भी इस्पात से अधिक मजबूत है। इसे न तो इस्पात की तरह रंगने की जरूरत है, न इसमें जंग लग सकता है और न यह खारे पानी में ही खराब हो सकेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे

सूचना

संशोधित निरसन शुल्क (Cancellation Fees)

निर्धारित यात्रा के टिकट कैन्सिल कराने पर उनके मूल्यों की वापसी बुकिंग स्टेशनों पर (जहाँ से टिकट खरीदे हों) की जाएगी जिनके निरसन शुल्क कोचिंग टैरिफ सं. १८–भाग १ के अन्तर्गत आई. आर. सी. ए. के नियम—२१३-१(३) में निर्धारित निम्न प्रकार संशोधित किये गये हैं :

कैन्सिल कराये गये टिकट	प्रति यात्री, निरसन शुल्क	रु. न.पै.
(अ) यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि से ५ दिन से अधिक पहले (यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि नहीं गिनी जाएगी)	वातानुकूलित तथा प्रथम श्रेणी...	२ ००
	द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी ...	० ५०
(ब) यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि से ४ तथा ५ दिन पूर्व (यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि नहीं गिनी जाएगी)	वातानुकूलित तथा प्रथम श्रेणी...	३ ००
	द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी ...	१ ००
(स) यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि से २ तथा ३ दिन पूर्व (यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि नहीं गिनी जाएगी)	टिकट के मूल्य का १०% किन्तु निम्नांकित न्यूनतम तथा अधिकतम निरसन शुल्क के अन्तर्गत :—	

श्रेणी	न्यूनतम प्रति यात्री	अधिकतम प्रति यात्री
	रु. न.पै.	रु. न.पै.
वातानुकूलित तथा प्रथम ...	५ ००	१० ००
द्वितीय तथा तृतीय ...	१ ५०	३ ००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(द) यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि से १ दिन पूर्व (यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि नहीं गिनी जाएगी)

टिकट के मूल्य का २०% किन्तु निम्नांकित न्यूनतम तथा अधिकतम निरसन शुल्क के अन्तर्गत :—

श्रेणी		न्यूनतम प्रति यात्री	अधिकतम प्रति यात्री
		रु. न.पै.	रु. न.पै.
वातानुकूलित तथा प्रथम	...	७ ५०	२० ००
द्वितीय तथा तृतीय	...	२ ५०	६ ००

(ई) यात्र प्रारम्भ होने वाले दिन ट्रेन छूटने के निर्धारित समय तक

टिकट के मूल्य का २५% किन्तु निम्नांकित न्यूनतम तथा अधिकतम निरसन शुल्क के अन्तर्गत :—

श्रेणी		न्यूनतम प्रति यात्री	अधिकतम प्रति यात्री
		रु. न.पै.	रु. न.पै.
वातानुकूलित तथा प्रथम	...	७ ५०	३० ००
द्वितीय तथा तृतीय	...	२ ५०	१० ००

(फ) निर्धारित ट्रेन छूट जाने पर

सामान्यतः कोई भी मूल्य वापसी न होगी। विशेष परिस्थितियों में सम्बन्धित रेलवे विभाग के केन्द्रीय कार्यालय को आवेदन करने पर विचार किया जा सकेगा।

प्रस्तुत संशोधित नियम १-७-६३ से कार्यान्वित होंगे। टिकट खरीदने की तिथि को लक्ष्य में न लेते हुए १-७-६३ के दिन तथा तत्पश्चात् निरसन कराये गये समस्त टिकटों पर प्रस्तुत नियम लागू होंगे।

—चीफ कमर्शियल सुपरिंटेंडेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या अब भी कुछ करना है ?

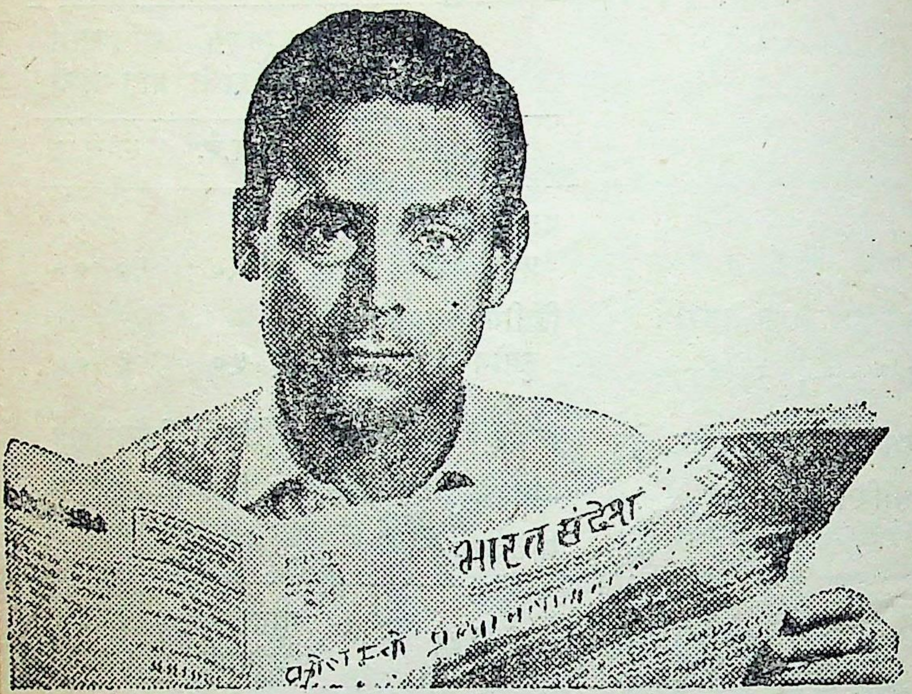

जी हां ! अब भी बहुत कुछ करना है। देश भर में अपूर्व एकता और असीम उत्साह की जो लहर फैली है, अपना लक्ष्य प्राप्त करने की जो दृढ़ता और प्रबल भावना जागृत हुई है, उसमें हमारी उदासीनता अथवा ढिलाई के कारण कोई कमी न आए, इसका हमें पक्का इंतजाम करना है। राष्ट्र के प्रति समर्पण, कर्तव्य-निष्ठा तथा अनुशासन से काम करने के दृढ़ निश्चय को हमें दोहराना है।

- अनावश्यक खर्च बंद करें, ठाट-बाट छोड़ दें।
- कुछ भी ज़ाया न करें—दफ्तर हो या घर, कहीं भी, किसी भी समय।
- अपने काम पर डटे रहें, फुर्ती और कुशलता से पूरा किया गया हर काम राष्ट्र को अधिक सबल बनाता है।
- अपना सोना राष्ट्र की सेवा में अर्पित करें, ढिलाई छोड़ें और मुस्तैदी से काम में जुटे रहें।

चौकस रहें

–राष्ट्र की तैयारी में हाथ बटायें।

DA 62/F6

जगदीश मेहरा द्वारा दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्रकाशित
[मुखपृष्ठ बृजवासी फाइन आर्ट ऑफसेट वर्क्स, मथुरा में मुद्रित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH

WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded.*
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly.*
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress.*
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I........Price : 80 nP.
Book II........Price : Re.1·00
Book III........Price : Re.1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price : 75 nP.

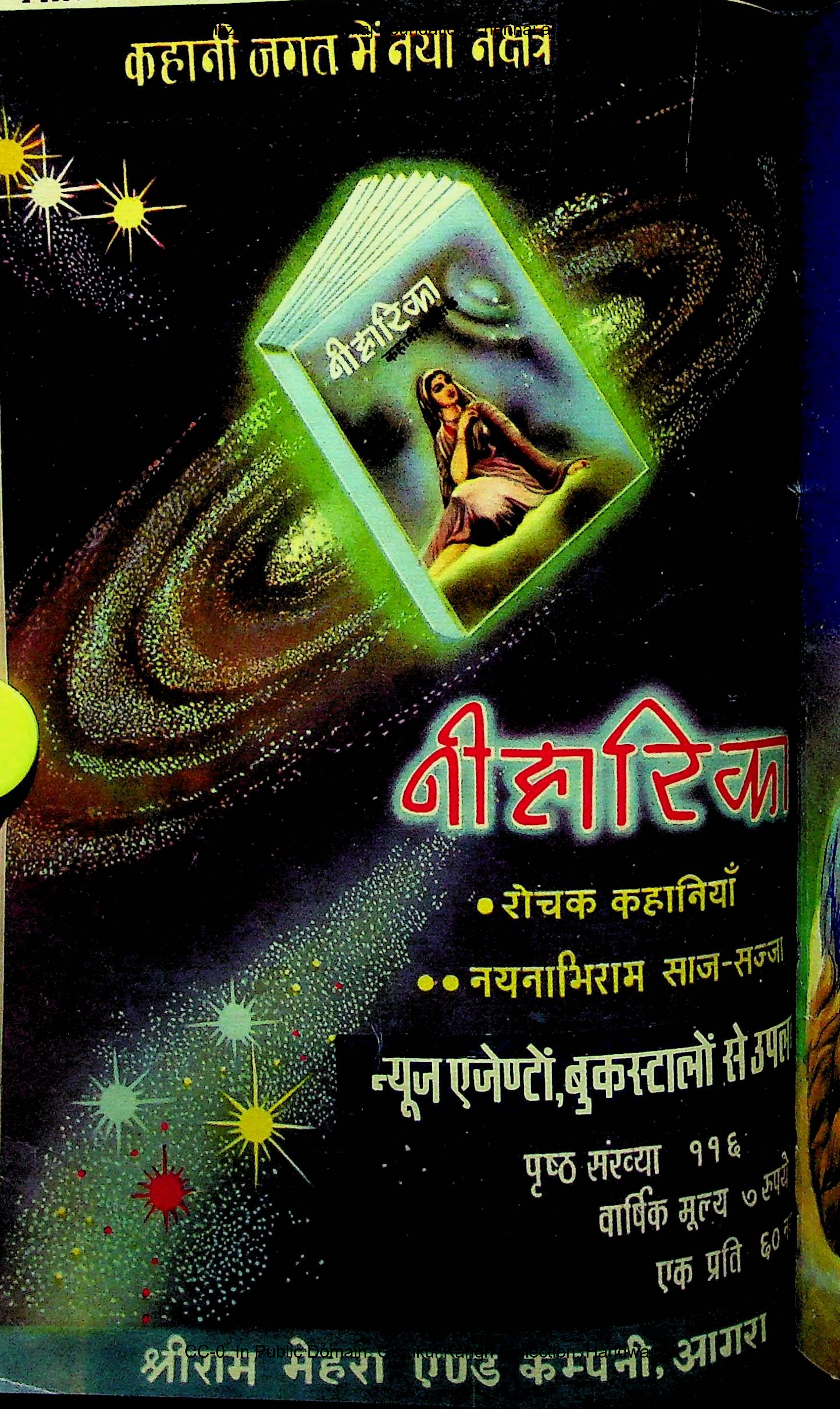

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar